

१६ पंदरह कर्म्मदान की ढाल	१०५
१७ आठवां व्रत की ढाल	११०
१८ नवमां व्रत की ढाल	११७
१९ दशमां व्रत की ढाल	१२६
२० इहारमां व्रत की ढाल	१३३
२१ बारमां व्रत की ढाल	१४१
२२ ६६ अति चार की ढाल	१६०

॥ श्री जयाचार्य कृत ॥

२३ पट्टिमा धारी श्रावक की ढाल	१६५
------------------------------------	-----

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

२४ तीन मनोरथ की ३ ढाल	१७८
२५ दश विध श्रावक आराधनां की १३ ढाल	१८५

॥ स्वामी श्री मोखनजी कृत ॥

२६ श्रावक गुणों की ढाल	२१८
-----------------------------	-----

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

२७ जिन आगुओं धर्म स्तवनम्	२२०
२८ जिन मार्ग भोलखना स्तवनम्	२२२
२९ असंयम जीव तत्त्व वर्जनीय ढाल	२२५
३० दया धर्म वर्णन ढाल	२२७
३१ कलश	२२८

॥ वाचकों से लेखक की प्रार्थना ॥

प्रिय वाचको ।

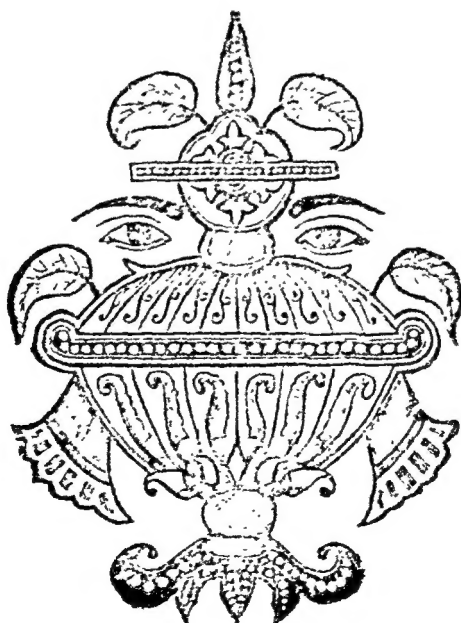
आपलोकों से प्रार्थना है कि मैंने जो यह पुस्तक छपाई जिसमें कई जगहें छपते समय मात्रादि स्पष्ट नहीं उघड़ी है तथा कई जगहें शब्दों में गलती रह गई है इसलिये निवेदन है कि विज्ञान यथा तथ्य जैसा होना चाहिए वैसाही शब्दोच्चारण करेंगे मैंने तो अपने मनोत्साह के बलसे तत्वार्थों और न्यायी तथा शान्ति शील धर्मानुयायियों को श्रीजिन प्ररूपित श्रावक धर्म ज्यो द्वादश व्रतरूप है जिसको परमपूज्य श्रीमज्झिम्मास्सनाली स्वामी ने यथार्थ विस्तार पूर्वक ढालों में जोड़के फरमाया है उसहीकी धारणा करके ग्राम भीनासर (बीकानेर) वासी श्रावक धनसुखदासजी हीरालालजी के आग्रह से प्रथम बार ८०० पुस्तकें भावार्थ सहित छपाके प्रगट करी है सो कोई अशुद्धार्य भाषाहो उसका मुझे बारंबार मिच्छामि दुक्कडं है तथा वाचकों से भी मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे पर कृपा करिके अशुद्ध शब्द के लिये क्षमा करेंगे और उसका भावार्थ समझ कै यथा शक्ति व्रत भङ्गीकार करके अपना आत्मोद्धार करेंगे, परंतु परद्रोही भवगुन ग्राही और हीनाचारी निन्दकों के फन्द में पड़के शुद्ध साधू साध्वी और श्रावक श्राविकाओं के निन्दक नहीं बनेंगे, गुनवानों के गुन सहन नहीं होते तब हीनाचारी हीनाचार के पुष्ट्यर्थ जगति से मिलती प्ररूपना

करिके शुद्ध श्रद्धालुओंको वीतराग प्ररूपित सुमार्ग से उभाड़-
कर हीनाचारीयों के बनाये ग्रन्थोंको शास्त्र कहके भोलेलोकों
को कुयुक्ति लगाकर हिंसा आदि पांचो आश्रव सेने सेवानें
और अनुपौदने में धर्म प्ररूपते हैं और थोडासा अक्षराभ्यास
करके अपनेही को पण्डित मानरहे हैं किन्तु यह नहीं जानते
कि केवल पढ़नेसेही वीतराग कथित धर्मको यथा तथ्य नहीं
जान सकतेहैं कुछ कम दश पूर्वतक मिथ्याती पढ़ जाता है परंतु
मीथ्याती का मीथ्यातीही है, इसही लिए कहनाहै कि जिना-
गमोंको रहस्योंको समझकर निरारंभी निःपरिग्रही होके संसारी
कर्त्तव्यों से अलगहो जनही आत्मोद्धार होगा ।

आपका हितेच्छु आचक

गुलाबचंद लूणियां

जयपुर



* श्रीः *

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

* दोहा *

प्रणमं श्रीअरिहन्त नित, द्वादश गुण संयुक्त ॥
दुष्ट कर्म शत्रूपते, हर्षियां बरवा मुक्ति ॥ १ ॥

कारज सिद्ध सकलकरी, थये सिद्ध भगवंत ॥
अष्ट गुणे युत ते नमूं, पाया सुख अनन्त ॥ २ ॥

आचारिज बन्दू सदा, गुण षड्तीस सु आर्य ॥
उपदेशक जिन धर्मनां, सारण वारण कार्य ॥ ३ ॥

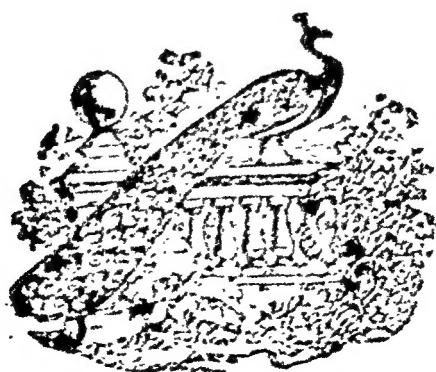
श्रुत ज्ञान द्वादसांग को, पढैं पढावे सार ॥
पंचवीस गुणधर सदा, उपाध्याय अणगार ॥ ४ ॥

फुन प्रणमूं सव साधुजन साधै शिव मगतेह ॥
सप्त बीस गुण शोभता, पंचाचार पालेह ॥ ५ ॥

सुमरूं श्रीभित्तू गुरू, प्रवल बुद्धि भण्डार ॥
प्रगटे पंचम अरक में, कियो वहोत उपकार ॥ ६ ॥

दया धर्म प्रभुजी कह्यो, आगम मांहि विचार ॥
भित्तूतास भलीपैरे, उलखायो तन्तसार ॥ ७ ॥

तसु अष्टम पट शोभता कालु गर्णीं गुणगेह ॥
 तन मनसैं सैयां थकां, पाप विघ्न मेटेह ॥८॥
 विनय मूल जिन धर्म है, तेहनां दोय प्रकार ॥
 श्रमण पंच महावय मयी, श्रावक द्वादश धार ॥९॥
 जिन आज्ञा है वस्त में, अव्रत आणां बार ॥
 न्याय दृष्टि करि देखिए, पक्ष पात सब टार ॥१०॥
 तीन गुप्ति पांचूं सुमति, पंच म्हाव्वय मान ॥
 पाले ते प्रभु पंथमें, अन्य अनेरा जान ॥११॥
 संवरनैं बलि निर्जरा, येहिज तेरो पन्थ ॥
 चाले तुज कहि चालसैं, श्रावकनैं निग्रन्थ ॥१२॥
 सरल भाव हृदयें धरी, सांभलिए जिन बान ॥
 गुलाब कहै व्रत आदरो, भारुयो श्रीवर्द्धमान ॥१३॥





॥ श्री जैन धर्मो जयति ॥

॥ श्रीसुगुरुभ्यो नमः ॥

✽ अथ श्रावक धर्म विचारः ✽



वक धर्म क्या है जिसको प्रायः सब ही सम्यग्दृष्टी जीव जानेहुए हैं। लेकिन बहुत से अज्ञानीजीव भ्रमवश मदान्धहोके श्रावक के खाने खिलाने आदि संसारी कर्तव्यको भी श्रावक धर्म समझे हुये हैं कहते हैं श्रावक धर्म अलग है और श्रमण धर्म अलग है परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय के प्रबलोदय से यह नहीं जानते के परस्पर खाना लिखाना तो संसारी व्यवहार इंद्रियपोषण है, वो "आश्रव है" यदि श्रावक धर्म अलग है तो संसारी कर्तव्य से या जिनाज्ञासे ऐसा विचारणा अवश्य ही चाहिये, संसारी कर्तव्यमें जिनाज्ञा कदापि नहीं है, जिस कार्य में जिनाज्ञा है वो ही कार्य निरवद्य और धार्मिक है

उसी कर्तव्यसें अशुभ कर्म निर्जस्ते हैं और पुन्य बन्ध होता है, जिस कार्यमें जिनाज्ञा नहीं है उस कार्य से एकान्त पाप कर्म का बन्ध है और किंचिन्मात्र भी धर्म नहीं है, तो बुद्धिमान् जन्म सहजमें समझ सकते हैं के श्रावक के खाने खिलाने में जिनाज्ञा नहीं है तो यह श्रावक धर्म नहीं है, अव्रत है । सम्यग्दर्शन पाके हिंसा, भूँट, चोरी, मेषुन, परिग्रहादि आश्रव द्वारोंमें जितनां जितनां प्रवर्तता है वो श्रावक धर्म नहीं है “अव्रताश्रव है” और अव्रताश्रव द्वारा पाप कर्म का बन्ध भगवानने कहा है अव्रतके सेने सेवाने भले जाननेमें पाप है ।

श्रीतीर्थङ्करोंने दोय प्रकारके धर्म प्ररूपे हैं श्रमण धर्म १ श्रमणोपाशक धर्म २ श्रमण धर्म तो पंच महाव्रत रूप, और श्रमणोपाशक धर्म द्वादशव्रत रूप है, साधूके सर्व प्रकारे सादय कर्म करने कराने अनुमोदने का मन वचन कायासे त्याग है इस से साधूका शरीर अधिकरण नहीं है उनके किसी प्रकार का पाप कर्म करने कराने अनुमोदने का आगार नहीं है तब ही सर्वव्रती संजती कहाते हैं ।

श्रावक सर्व ब्रती नहीं है “देशब्रती है” सावद्य के त्याग हैं वो देशव्रत संवर है, जीवाजीवादि नव तत्वों को यथार्थ समझनां शुद्धदेव शुद्धगुरु शुद्धधर्म की परीक्षा करके जिन वचनों की (आस्था) प्रतीति रखके श्रीजिन प्रणीत तत्वोंका शुद्ध श्रद्धान बिनां चारित्र नहीं होता चारित्र के बिनां मोक्ष नहीं हो ।

अनादि कालसे जीव पाप कर्मोपार्जन करके चतुर्गति संसाररूप अटवीमें परिभ्रमण कर रहा है अपने स्वभाव को भूलके परभावमें लिप्त हो रहा है मोह वश अपनी पवित्र आत्माको भव शागरमें डुवोरहा है इसका मुख्य कारण “मिथ्यात्व” ही है, मिथ्यात्व से ही जीव ज्ञानावरणीयादि अशुभ कर्माटक के पुंजके पुञ्ज संग्रह करके नरक निगोदादि दुःखोंके भोगी होते हैं ।

अठारे प्रकार के पाप कर्मों में मिथ्यादर्शन सत्यही मुख्य है, इसीलिये सद्गुरु का कहनां है हं देवानुप्रिय जहांतक बनें जहां तक “सम्यग्दर्शन” पानेका ही उद्योग करनां उचित है, मिथ्यामयी निद्रामें सोतेहुए बहुत समय व्यतीत हुआ, क्या

अभी तक इस निद्रामें सोते ही रहोगे देखो इस निद्रानें तुम्हारा आत्मगुण दबाया है तुम कैसे हो और अब किसतरह हो रहे हो, यदि अब सुसंग पायकर भी नहीं जागोगे तो फिर कब जागोगे, यह मनुष्य जन्म आर्यक्षेत्र उत्तमकुल दीर्घायुः पूर्णेंद्री सदगुरु संयोग पानां महामुशिकल है ।

सदगुरु संयोग सें ही सब बातें यथार्थ जानी जाती है सम्यग्दर्शन सूर्योदयसें ही मिथ्यामयी महान्वकार दूरहोता है, श्रीजिनराज देवनें ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ तपही ४ मुक्ति मार्ग कहा है, इसलिए पूर्वोक्त चातुर्मार्ग की साधनां करो, अपने आत्महित पथको छोड़कर अपने शरल और विनयी राह को त्यागकर जगत्पूज्य ऋषिमार्गको भूलकर, तुम किस मार्गको भटकते जा रहे हो, यह तुमारा मार्ग नहीं है, कुमार्गको छोड़कर सुमार्गमें आना ही परमप्रिय और मोक्षदाई है, ज्ञानवृद्ध संयमी प्राचीन ऋषिगण ज्यो मार्गचले हैं और कहगये हैं उसी मार्गपर चलनेसें आत्मशक्ति प्रकट होगी और अनन्त सुखोंके भोगी होंगे, अन्यथा आत्म-

शक्ति लुप्तहोने का ही उपाय है, जरा ज्ञान नेत्र खोलके देखो संसार बढ़नेका मार्ग कैसा है ।

* प्रवृत्ति *

संसारी कर्तव्योंकी प्रवृत्ति मार्गको छोड़कर निवृत्ति मार्गका अवलम्बन करो प्रवृत्ति मार्गसे जन्म जरा मरणादि दुःखोंका समूह बढ़ता है यदि तुम सदा सर्वदा अचल अटल रहना चाहते हो तो अरण्ये जिन प्रणीत निवृत्ति मार्गको ग्रहण करो अजरामर होनेका एक येही उपाय है, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग क्या है पहले इसको समझो, प्रवृत्ति मार्ग है जिनाज्ञा बाहर संसारी कामों में प्रवर्तना, गृहस्थाश्रमी अज्ञानी जीव और हिंसा धर्मी कुठुरवों का कहना है अर्थ बलसे बलवान होनेकी चेष्टा करो, अर्थ हीन होके किसी विषय में भी सफलता नहीं प्राप्त करसकोगे, वाणिज्य में प्रवृत्त हो, अर्थ संग्रह के लिए गिरिशृङ्ग मरुभूमि समुद्रोल्लङ्घनादि घने जङ्गलों में विना विचारे चले जावो, चाहे जमीन खोद भूगर्भमें प्रवेश कर रत्न संग्रह करो, समुद्र के भीतर गोता लगाकर मोती निकाल ल्यावो, यही क्यों जिस तरह बनसकै जिस

तरह अर्थ संग्रह करो, रुपया बड़ी चीज है किसी प्रकार रुपया तुम्हारे पास होजाय फिर संसार में तुम्हारे लिये कोई चीज भी दुःप्राप्य नहीं रहेगी, इससे जिसतरह बनें उसी तरह धन धान्यादिक का संग्रह करो, और “निवृत्ति” मार्ग है इनसे (निवर्तनां) छोड़णां, चतुर्दशपूर्वधर गणधरोंने ज्यो वचन श्रीजिनेश्वर महाराज से सुनके शास्त्र रचे हैं उन शास्त्रों के वाक्य है (धम्मो मंगल मुक्खिं अहिंसा संजमो तवो) ‘अहिंसा परमो धर्मः और उत्कृष्ट मङ्गल’ ऋषिगण बारंबार कह रहे हैं’ अर्थही अनर्थका मूल है, यह बात सदैव ध्यानमें रखनां यदि अमर होनां चाहो तो निर्लोभ हो, धनकी लालसा छोड़ो, वचन निर्वद्य और सत्य कहो, अदत्तग्रहणको त्यागो, ब्रह्मचर्यधरो, संयमी हो, तपस्वी हो ।

अब न्यायाश्रयी और तत्त्वज्ञ पुरुष विचार सकते हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति में कितना फरक है, शुद्ध नीतिसे विचारकर देखो तो साफ साफ मालुम होता है प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्ति मार्ग एकदम विरुद्ध है, संसारका रास्ता और धर्मका रास्ता अलग अलग है, ज्ञान दर्शन चारित्र्यादि शिव मार्ग हैं, ज्यो जीव सम दृष्टी

होगा वोह एकाएक कुकर्म करने से डरेगा यथा-
शक्ति यम नियम अङ्गीकार करेगा, पाप के कामों में
पाप, और धर्म के काम में धर्म समझना ही सम्य-
ग्दर्शन है, जहां तक सम्यग्दर्शन का बल है तहां तक
नरक निमोद तिर्यच मनुष्य गती का आयु बंध
नहीं होता, यदि होयतो देवायु हो, यही क्यों देव
गति में से भी केवल वैमानिक देवायु ही बांध
सकता है, कहिये कितना बड़ा महात्म्य सम्यक्
का है, सिर्फ यही नहीं सम्यग्दर्शन पाने से बहुत
से गुण उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दर्शनी जीव चारित्र्य
मोहनीय ज्योपसमानुसार व्रत धारण कर देशव्रती
या सर्वव्रती गुणस्थान प्राप्त करते हैं सम्यग्दर्शनी
के संवरपदार्थ अकर्त्तापण ज्यो जीव का खास
गुण है वो प्रकट होता है ।

मिथ्यात्वी जीव अनेक तरह के कष्ट सहन कर
तप जप शील सन्तोषादि सुकार्य करता है लेकिन
संवर पदार्थ की प्राप्ति उन्हें नहीं होती निर्जरा धर्मी
ही है, सूत्रों में कहा है बाल अज्ञानी का मास मास
जमया तप सम्यग्दृष्टी के व्रत पञ्चरत्नाण के फल के

षोडसांश नहीं आता, सोलहें ही क्या, हजारमें लाख में करोड में यावत् संख्यात असंख्यातमें भागभी नहीं आसकता, सम्यक्त्व के संवर और निर्जरा दोन्यू धर्म है एक वक्त सम्यक्त्व पाजाने से अनन्त संसारीका प्रति संसारी होता है, इसीलिये कहना है सम्यक्त्व का पानाही दुर्लभ है शास्त्रों में कहाहै—
चत्वारि परमङ्गाणि दुल्लहाणीहजंतुणो माणुसत्तं ।
सुयीसद्धा संजमंमीय वीरियं ॥ १ ॥

अर्थात्—मनुष्य भव १ श्रुतकहिये सिद्धान्त श्रवण २ सत्यश्रद्धान ३ संजममें बल पराक्रम ४ यह चार परम अङ्ग जीवको अति दुर्लभ हैं ।

तथा कहा है—“सद्धा परम दुल्लहा” यानि सुद्धसम्भनां महादुर्लभ है, श्री बीतराग प्रभुने केवल ज्ञान केवल दर्शनसे लोकाऽलोक के भाव देखा, वैसाही कहाहै उनके वचन सुनके यथार्थ श्रद्धा-करणां और आस्था प्रतीति रखना उसीका नाम सम्यक्त्व है, सम्यग्दृष्टी के जिन वचन हीं अर्थ पर-मार्थ हैं, जिन प्रणीत धर्मसे उनके हाड और हाडों की मींगी रंगी हुई है वह समदर्शी देवताओं के

डिगाए भी नहीं डिग सकते, सम्यग्दर्शन में ही सदा अचल और अटल है, स्वामी भीखनजी ने भी ढालमें कहा है—“दिढ़ समकितधर थोडला” याने दृढ़ सम्यक्त्व धारी बहुत थोड़े हैं, स्वामी भीखनजी कौनसे कबहुए और कैसी प्ररूपणां करी यदि इन सब बातोंको यथार्थ जानना है तो भिच्छु चरित्र वाचणों से मालूम होजायगा, स्वामी भीखनजी इस भरतक्षेत्र पंचम कालमें मानूं जिनराज वतहोगये हैं,

जैसा रागद्वेष रहित निर्मलमार्ग श्रीबीतराग प्रभूका है ज्यो श्रमण माहणका आदेश और उपदेश मतहण मतहणों है वोही आदेश और उपदेश स्वामी भीखनजी का है, साधू और श्रावक धर्म श्रीवीरप्रभूने सूत्रोंमें कहा है वैसाही कथन स्वामी का है लेकिन बहुतसे लोग कहते हैं भीखनजी ने दयाधर्म को उठादिया और गुरुसे लड़ भगड के अलग हो अपना मजहब अलग जमालिया इत्यादि अनेकानेक बातें मनमानें सो भोले भाले लोगोंको बहकाने के लिये या अपनी उन्नती के लिए कह रहे हैं मगर न्यायवादी पुरुषको जरा सोच विचार-लेना परमावश्यक है देखो श्रीभगवानने तो कहा

है पृथिव्यादि पदकायों के जीवोंको न मारना, न मराना, न अपने शरीर में किसी प्राणी को कष्ट देना, भय नहीं उपजाना, वो ही अभय दान है परन्तु एकेंद्रियको मारकर पंचेन्द्रिको साता उपजाने में धर्म नहीं कहा है असंजमीका जीवितव्य और वाल मरण बांछणे में एकान्त पाप ही कहा है । धर्मार्थ हिंसा करने में दोष नहीं यह वचन अन्नगी रियों का है श्रीआचाराङ्ग सूत्रमें खुलासा कहा है, ऐसी अनेक बातें स्वामी भीखनजी ने कही है—न्या-याश्रयी पुरण पक्षपात छोडकर स्वामी कुन शंभ चांपाई बोल थोकडा दाल सलवन बगेरह पेंडंग लो साफ मालूम होजायगा के स्वामी के प्रवचण और भगवानके प्रवचणमें फरक नहीं है । मोक्षाभिलाषी जीवोंको तबही कहते हैं के हे प्रियवरो यह मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पाया है तो शुद्ध सं-यम पालने वाले सुनिराजों में सूत्र सिद्धान्त श्रवण करो, जिन वीरप्रभुको सदादर्शी सर्वज्ञ मान रहे हो तो उनहीं का कथन ज्यो जिनागम है सो सुनों, केवल सुनके ही न रहो सत्य सखो और यथा-शक्ति व्रत धारण करो, अव्रत घटावो, तब इस जीव

का भलाहोगा, भ्रष्टाचारियों की संगतसे पक्षपातमें पड़के शुद्ध आचार पालने वालोंके निन्दक मतबनों, शुद्ध पंचमहाव्रत पालने वाले, ४२ दोष टालकर आहार पांती के लेनेवाले, पंचेन्द्रीके विषयों को जीतने वाले जतीलोगों के उपासक बनूं तब सब बातें ज्यो सूत्रोंमें कही है मालुम होगी ।

देखो अपने पूज्य वा पूर्व ऋषियोंने क्या क्या वाक्य कहे हैं, अहिंसा, सत्य, अदत्तादाननिवर्तन, ब्रह्मचर्य, निलोभतादि ही शिव मार्गकी साधनां कही है । देखो विजय देवसूरीने क्या आत्महितोपदेश कहा है ।

चेतारे चेतो प्राणियां, मतिराचारे स्मणीरे संगके सेवारे जिनवांणी ॥ ए आंकडी ॥

सुरतरुनीपरै दोहिलोरे, लाधो नर अवतार । अहलां जनम किम हारीये, कांई कीज्योरे मनमांहि विचार के ॥ चेतोरे० ॥ १ ॥ पहली तो समकित सेवियेरे, जेछै धरमनो मूल । संजम समकित वाहिरो, जिन भाष्योरे तुस खंडवा तुल्य के ॥ चेतोरे० ॥ २ ॥ अरिहन्त देव आराधज्योरे, गुरुगिरवा शुद्ध साध ।

धर्म जिनेश्वर भाषियो, एसमकिंतरे सुतरु समलाध
 के ॥ चेतोरे० ॥ ३ ॥ तहत करीनें शरधज्योरे, जे
 भाष्यो जगनाथ । पांचोंही आश्रव परिहरो, जिम-
 मिलियेरे शिव पुरनों साथ के ॥ चेतोरे० ॥ ४ ॥
 जीव बंछै सर्व जीवणोंरे, मरण न बंछै कोय । आप-
 समूं कर लेखवो, त्रस थावरे हणज्यो मत कोय के ॥
 चेतोरे० ॥ ५ ॥ अपजस अकीर्ति इण भौंरे, पर
 भव दुःख अनेक । कूड कहतां पामीये, कांई आणों
 रे, मन मांहि विवेक के ॥ चेतोरे० ॥ ६ ॥ चोरीले-
 वै कोई पर तिणोंरे तिणथी लागैछै पाप । तो धन
 कंचन किम चोरीये तेथी बांधैरे भव भवमें संताप
 के ॥ चेतोरे० ॥ ७ ॥ महिला संगे दूहज्यारे, नव
 लख सत्री उपजन्त चणोंक सुखै कारणों, किम की-
 जेरे हिंसा मतिवंत के ॥ चेतोरे० ॥ ८ ॥ पुत्र
 कलत्र घर हाट नीरे, ममता मतकीज्यो फोक जेह
 परिग्रह मांहिछै, ते तो छांडीरे गया बहुला लोक
 के ॥ चेतोरे० ॥ ९ ॥ अल्प दिवशनों पाहुणोंरे,
 सहुको इण संसार । इकदिन ऊठी जावणों, कुणजां-
 गोंरे किणहीं अवतार के ॥ चेतोरे० ॥ १० ॥ व्याधि
 जरा ज्यां लग नहीं रे, तहां लग धर्म संभाल । धर

सजल घन बरसतां, कुण समर्थरे बांधेवा पालके
चेतोरे० ॥ ११ ॥ अंजलीनां जल नीपैरे, क्षण
क्षण छीजै छै आव। जावैते नहिं वाहुडै, जरा घा-
लेरे जोवन में घाव के ॥ चेतोरे० ॥ १२ ॥ मात
पिता बन्धव बहूरे, पुत्र कलत्र परिवार। स्वारथ लग
सहुको सगा, कोई परभवरे, नहिं राखण हारके ॥
चेतोरे० ॥ १३ ॥ क्रोधमान माया तजोरे, लाभ
न करजो लगार। समता रसपूरी रहा, बले दोहिलोरे
मानव अवतारके ॥ चेतोरे० ॥ १४ ॥ आरम्भ
छोडो आतमारै, पीवो संजम रस पूर। शिव रमणी
वेगावरो, इम भाषैरे विजयदेव सूरके ॥ चेतोरे०
॥ १५ ॥ इति ॥

प्रियवरो इस ढालका अर्थ समझो, न्याय दृष्टी
से देखो, विशुद्ध बुद्धिसे विचारो, विजयदेव सूरि ने
क्या कहा है, पंचाश्रव द्वार सेनें सेवानें में एकान्त
पाप कहा है, किंचित्भी आश्रव द्वार सेनें सेवानें में
धर्मका लेश नहीं हैं सम्यक्त्व का सेवना ही
मुख्य कहा है, शुद्धदेव गुरु धर्मकी साधना ही
सम्यक्त्व और शिव मार्ग है।

कई लोग कहते हैं जिन प्रतिमां की पूजा जल चन्दन पुष्पादि अष्ट द्रव्यों से करना यही श्रावक धर्म है, द्रौपदी राजाकी पुत्री द्रौपदीने पूजा करी है, तथा देवलोकों में देवता पूजन करते हैं, जिसका उत्तर यह है, देवता श्रावक नहीं है देवता तो मिथ्यात्मी व सम्यक्त्वी दानूँ ही प्रकार के होते हैं, मिथ्यात्मी है उनमें पहला गुणस्थान है सम्यक्त्वी है, उनमें चतुर्थ गुणस्थान है, लेकिन पंचम गुणस्थान ज्यो श्रावक पद है वोह किसी भी देवतामें नहीं है, तो प्रतिमां पूजना श्रावक धर्म कहाँ रहा 'ग्रामोनास्तितर्हि सीमां विवादः क' याने गांव नहीं है वहां सीमांकी लड़ाई क्यों ग्राम बिना सीमां नहीं होती, तथा द्रौपदीने प्रतिमां की पूजन करी उस वक्त उसमें सम्यक्त्व थी ऐसा सूत्रमें भी नहीं कहा है और उस वक्त सम्यक्त्व का होना भी संभव नहीं है क्योंकि द्रौपदीने पूर्व भवमें पांच भरतार वरने का नियाणां किया था तो ऐसा तीव्र रसका निधान पूर्ण हुए बिना सम्यक्त्व कैसे फरस सकती है, तथा आचार्य गंध हस्तीनें उवनिर्युक्ति टीकामें द्रौपदीके एक पुत्र होने के बाद सम्यक्त्व स्पर्शनां

कहा है और स्वयंवरमंडपमें आते वक्त द्रौपदी ने पूजन करी ऐसा अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र में कहा है तो उस वक्त द्रौपदीके काम भोगकी तीव्रामिलापा स्पष्ट दीखती है, इसलिए उस वक्त समकित का होना असंभव है । आनन्दादि दश श्रावकों का वर्णन श्रीवीर प्रभूनें उपासक दसा सूत्र में कहा है, तहां कहीं भी प्रतिमां पूजने का अधिकार कहा नहीं, श्रावक धर्म द्वादश व्रत रूप है उनका वर्णन विस्तार पूर्वक कहा है, ज्यो व्रत है वो श्रावक धर्म है अव्रत है वह अधर्म है, देवलोक में ज्यो देवता जिन प्रतिमां पूजते हैं वो उपजते ही राज्याभिषेक समय सस्र प्रतिमां पूतली आदि ३२ बत्तीस प्रकार के बांनें की पूजन करते हैं उनकी मर्यादा वोही है हितकारी सुखकारी विघ्न निवर्तक और फल सहित उनको इस भवमें पुन्यानुसार पूर्व पश्चात् है, संसारी मंगल है, अगर धार्मिक कार्य हो तो केवल समदृष्टी ही को पूजना चाहिये मिथ्यात्वी तो धर्म अधर्म समझते नहीं लेकिन देवलोक की मर्यादा राज बैठने के वक्त ज्यो है सो सब उनकूं करनी पड़ती ही है मिथ्या-

त्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं परं द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे होसकती है ज्यो जिनाज्ञा वहिस्कृत है वो सावध्य है, और सावध्य कार्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, श्रावक के सामायक पोषह में सावध्य जोगका त्याग है इस लिए द्रव्य पूजा नहीं करता, भाव पूजा ज्यो बन्दनां जयणायुक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुननां स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवध्य कार्यकी जिनाज्ञा है वोह सब कार्य सामायक पोषह में करता करता और अनुमोदता है और उस ही कार्य से अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव लोकसे अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहा वीरस्वामी के पास आया तब भगवन्त से पूछा मैं आपको बंदना नमस्कार करूँ तब प्रभूने कहा यह तुमारा पुराना आचार है ? जीत आचार है २ यह तुमारा कार्य है ३ यह तुम्हें करणे योग्य है ४ यह तुमको आचरणे योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करणों के लिए पूछा तो आदर नहीं दिया मौनरक्खी और मनमें भला नहीं

जानां ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणीं सूत्र में है, तो न्यायवादी और निरपत्तीको विचारणां चाहिए कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवंत श्रीमहावीर-स्वामीने अपने सुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापना निक्षेपा के आगे नाचनां कूदनां ताल मंजीरे आदि बजानां तथा एकेन्द्री जीवोंको विनास करने की आज्ञा कैसे हो सकती है, जब श्रीवीर प्रभूनें जिस कार्य को अच्छा ही नहीं जानां तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जान सकते हैं सम्यग्दृष्टी जीव जब तक सर्वव्रती नहीं हुआ है जब तक संसार में अनेक कर्तव्य करता है परंतु धर्म तो उसही कार्य में समभंगा जिस कार्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य में सम्यग्दृष्टी तो कदापि धर्म नहीं समझ सकता । देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

* ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत *

दुल हो नर भव पामणों जीवनें, दुल हो श्रावक
कुल अवतारो, गुणवन्त गुरुनों संग छै दोहिलो

त्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं परं द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे होसकती है ज्यो जिनाज्ञा वहिस्कृत है वो सावद्य है, और सावद्य कार्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, श्रावक के सामायक पोषह में सावद्य जोगका त्याग है इस लिए द्रव्य पूजा नहीं करता, भाव पूजा ज्यो बन्दनां जयणायुक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुननां स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवद्य कार्यकी जिनाज्ञा है वोह सब कार्य सामायक पोषह में करता कराता और अनुमोदता है और उस ही कार्य से अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव लोकसे अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहा बीरस्वामी के पास आया तब भगवन्त से पूछा मैं आपको बंदना नमस्कार करूँ तब प्रभूने कहा यह तुमारा पुराना आचार है १ जीत आचार है २ यह तुमारा कार्य है ३ यह तुम्हें करणे योग्य है ४ यह तुमको आचरणे योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करणें के लिए पूछा तो आदर नहीं दिया मौनरक्खी और मनमें भला नहीं

जानां ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणीसूत्र में है, तो न्यायवादी और निरपत्तीको विचारणां चाहिए कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवंत श्रीमहावीर-स्वामीने अपने मुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापनां निक्षेपा के आगे नाचनां कूदनां ताल मंजीरे आदि बजानां तथा एकेन्द्री जीवोंको विनास करने की आज्ञा कैसे हो सकती है, जब श्रीवीर प्रभूनें जिस कार्य को अच्छा ही नहीं जानां तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जान सकते हैं सम्यग्दृष्टी जीव जब तक सर्वव्रती नहीं हुआ है जब तक संसार में अनेक कर्तव्य करता है परंतु धर्म तो उसही कार्य में समर्पण जिस कार्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य में सम्यग्दृष्टी तो कदापि धर्म नहीं समझ सकता । देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

*** ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत ***

दुल हो नर भव पामणों जीवनें, दुल हो श्रावक
कुल अवतारो, गुणवन्त गुरुनों संग छै दोहिलो

ते पामीनें मत हारोरे प्रांणी जीवदया व्रत पालो
 ॥ १ ॥ आश्रव प्रति पत्त संवर वोल्हो, तेहनीं
 रहस्य विचारो, आरम्भ आश्रव संजम सम्बर, इम-
 जांणी जीव म मारोरे ॥ प्रांणी जी० ॥ २ ॥ जीव
 सहते जीवणूं बळ्हे, मरण न बळ्हे कोई, आपणै
 दुख छै जिम छै परनें, हिये विमासी जोईरे ॥
 प्रांणी जी० ॥ ३ ॥ अंग उपाङ्ग शस्त्र धारा अणी
 सू, नख चख छेदै कोई, जेहवी वेदनां मनुष्यने होवै
 तेहवी एकेन्द्रीनें होईरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ४ ॥
 जोजरा पुरुषनें बलवन्ततरुणो, देवै मुष्टि प्रहारो ।
 जेदुख वेदै तेहवो एकेन्द्रिनें, लीधां हाथ मभारोरे ॥
 प्रांणी जी० ॥ ५ ॥ समकित विन गज भव सुस-
 लारी, दया चोखै चित पाली । प्रति संसार कियो
 तिण्ठांमै, मेघकुंमर हुयो दुखटालीरे ॥ प्रांणी जी०
 ॥ ६ ॥ अभय दान दानां मांहि मोटो, बलेदान
 सुपात्रे दाख्यो । आगम सांभलनै जिनमत जोवो,
 मूलदया धर्म भाष्योरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ७ ॥
 लोह शिला ज्यो तिरै महोदधि, कदा पश्चिम ऊगै
 भानूः ॥ सहज अग्नि पण शीतल होवै, तोही
 हिंसामै धर्म म जाणोरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ८ ॥

रवि आंधमियां दिवस विमासै, अहिमुख अमृत
जोवै ॥ विषखायां बले जीवणूं बांछै तो हिंसामें
धर्म होवैरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ६ ॥ अग्नि सींचानै
कमल बधारै, चीर धोवा न कादो आणै ॥ ज्यों
कुण्डल प्रसंगै मूख मानव, जीवहणै धर्म जाणैरे ॥
प्रांणी जी० ॥ १० ॥ आगम वेद पुराण कुरानमें
कह्यो दया धर्म सारो ॥ बलि जिनजीरा बचन
सांचाजाणूं तो, छकाय जीवानें मतमारोरे ॥
प्रांणी जी० ॥ ११ ॥ अर्थ अनर्थ धर्म जाणानें,
जीवहणै मन्द बुद्धि ॥ पिण धर्मकाजें छकायहणै
त्यांरी, सरधा धणीछै औंधारें ॥ प्रांणी जी० ॥ १२ ॥
सूइरेनांकै सीधड़ोपोवै, ते किम आघो पैसे ॥ हिंसा
मांहि धर्म प्ररूपै, ते सालो साल न बैसैरे ॥ प्रांणी जी०
॥ १३ ॥ पिता विनां पुत्र उपन्नो, मा विन बेटो
जायो ॥ यों हिंसामें धर्म प्ररूपै, यो मूनै अचरिज
आयोरे ॥ प्रांणीजी ॥ १४ ॥ पार्श्वचन्द्र सूरभिणै
इण परै आणांसहित करुणां पालै ते नर दुर्गति ना
दुखटालै ज्ञानकलाउजवालेरे प्रांणी जी० ॥ १५ ॥ इति

* अथ ढाल दूजी चाल तेहीज *

चैत्य मंदिर मांदि वृद्ध ज ऊग्यो, अनन्त जी-
 वानू बासो ॥ लोह कुहाड़ीले आपणछेदे, कांई
 करो दुर्गति वासोरे मुनिवर हिंसा धरम कांई भाखो
 ॥ १ ॥ सांच कहै तो ते नहिं मानै, कूड कहै ते
 कीजे, ॥ असत्य भाषी नैं हीणांचारी, तेगुरु कर
 आघालीजे रे ॥ मुनि० ॥ २ ॥ चारित्र पाली
 भुक्ति पहूंता, ते मारग नहिं थापो । मूढ मती होई
 जीव विराधो, न्यायकरो एहवो पापोरे ॥ मुनि०
 ॥ ३ ॥ धरम उथापो नैं हिंसा थापो, छकाय प्रांण
 लुटावो । धर्म तणू छांटो नहिं मांहीं, अहलो जन्म
 गुमावोरे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥ वनमें बावरी बावर
 मांडै, लोकांमें हूवै पुकारो । भगवन्त आगलि बा-
 वर मांडयो लाखां कोड़ारे संहारोरे ॥ मुनि० ॥ ५ ॥
 उणांनैं चाम चाहिजे नैं मांस खाई जे पेटरे का-
 रण खावै । वै जीव वीराभिनै मन पछतावै इणरो
 ज्वाब न आवैरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ थे चाम न
 भीटों मांस न खावो कांई तुम जीव हणावो । थे
 भगवन्त मांथै दूषण द्योछो न्याय तुमे दुर्गति जा-

दोरे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥ खाजा लाइ सेव सुहाली
 भरभर थाल्यां ल्यावो वै त्यागीथे भोगलगावो कांई
 तुमें दुर्गति जावोरे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥ कई श्रावक
 राते अन्न न खावै तुमे देवने कांई चढावो । मारग
 छोड कुमारग व्याल्या एकरणी सें दुखपावोरे ॥
 मुनि० ॥ ९ ॥ भगवन्त वचन नीं प्रतीति नहीं
 कै तिणयी फैन करावो । देव लोकथी तो उरें
 जार्णीजे निश्चै निगोदमें जावोरे ॥ मुनि० ॥ १० ॥
 देवरे करणैं छकाय हणावो, गुरुरे कारण खावो ।
 धर्मरै कारण हँस हँस ल्यावो थे किणरै नांव छुडा-
 वोरे ॥ मुनि० ॥ ११ ॥ प्रीति पुराणीं थांसँ पहली
 हूँती तिणसूं थानै चितराउं । में म्हारो मन निर्मल
 कीधो जिन मारग गुण गाउरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥
 भावकरीनै भगवन्त पूजो द्रव्यै दूर करावो । सुखे
 समाधे मोक्ष पधारो बहुला सुख जिम पावोरे ॥
 मुनि० ॥ १३ ॥ साधूतो छकायनां पिहर थे कहिं
 कहिं कांई हणावो । अरज हमारी सांची मानूँ
 फेर चोरासी में नहीं आवोरे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥
 पार्श्वचन्द्र कहै चारित्र लेई आरंभ थी मनटालो ।
 बीर वचन थे सांचो परूपो सूधो संजम पालोरे ॥
 मुनिवरहिंसा धरम कांई भाखो ॥ १५ ॥ इति

श्रव विवेकी जीवों को पक्ष पात रहित होके विचारणां चाहिये कि केवल स्वामी भीखनजी नें ही द्रव्य पूजाको सावध्य नहिं कहा है स्वामी भीखनजी के हुए पहले ज्यो आचार्य और जती हुये उनमें से बहुतसो नें कहा है; देखो महानिशीथ सूत्रके पंचम अध्ययन में कमलप्रभाचार्यने कहा है जिनालय सर्व सावध्य है मुझे श्राचरणे योग्य और प्ररूपणां योग्य नहीं है तथा श्रीभगवन्त महावीर स्वामी निर्वाण हुए ६८० वर्ष पीछे श्रीदेवर्द्धिगणी सूत्र लिखे उनके ५५ वर्ष पीछे हरिभद्र सूरी स्वर्ग हुए जिनोंने महानिशीथ सूत्रका उद्धार किया और चैत्यवास खंडन किया, अभयदेव सूरीके गुरु जिनेश्वर सूरी तथा बुद्धिसागर सूरी सं० १०८४ में दुर्लभ देवकी सभामें चैत्यवासियों से विवाद कर जय प्राप्त हुये उनके प्रशिष्य जिनवल्लभ सूरीने जिनागम का पक्ष ले ४० काव्य का संघपट्ट ग्रंथ बनाया उनोंने चैत्यवासियों का तथा सिथलाचारियों का भेषधारियों का कैसा खंडन किया है वो संघपट्ट ग्रंथ बांचने से स्पष्ट मालूम होसक्ता है जिन प्रतिमा यात्राके लिए संघपट्ट की २१ वीं गाथामें कहा है कि—

काव्य २१वां संघपट्टक ग्रंथका

आकृष्टं मुग्ध मीनान् बहिः पिशितव दिवमा-
दश्यं जैनं । तन्नाम्नास्थरूपानपवरकमठान्
स्वेष्ट सिद्धैश्च विधाप्य ॥ यात्रास्नात्राद्युपायैर्न
मसितक निशाजागमद्यै शूलैश्च । श्रद्धालुर्नाम
जैनैः प्रकलितइव शठैर्वच्यते हा जनोऽयम् ॥२१॥

भावार्थ ।

अर्थात् जैसं मच्छीगर मच्छी पकड़ते समय लोहके कांटे
पर मानस लगाके मच्छियों को ललचाके जालमें पकड़तेहैं
वैसेही द्रव्य लिंगी भेषधारी स्व स्वार्थ के लिए मूर्ख लोगोंको
जिन दिव दिखाके और यात्रा स्नात्र का महाफल बताके
श्रद्धालु जैनीयों को छल रहेहैं याने मौल्यमार्ग से विमुखकर
भवसागर में डबोतेहैं

जिन वल्लभ शूरिनें मूलकाव्य में ऐसा कहाहै उनके पाठ
श्रीजिनवचनशूरि दादाजी हुए उन्होंने भी सिधिलाचारी द्रव्य
लिंगी तथा चैत्य आसियों का खंडन कियाहै उनके पाठ जिन
पतिशूरि हुए उन्होंने संघपट्टक ग्रंथ ४४ काव्योंकी टीका
करीब तीनहजार श्लोक प्रमाण करी ये सब अधिकार पुस्तक
संघ पट्टक छपी हुई के प्रस्तावना में कहाहै, तथा अर्थ करिन
वालेनें अपनी श्रद्धानुमार कई जगहें विपरीत अर्थ कियाहै
परंतु मूल काव्य २१ वांमेंतो जिनवल्लभ शूरिनें उषो कहाओ
ऊपर लिखाहीहै, तथा द्वादसांगरूप श्रीजिनवचन गणधररचित

हैं उन्होंने जगहें जगहें पंचमहाव्रतमयी या द्वादसव्रतमयी धर्म कहा है जीव हिंसाका फल महा दुःख दायीही कहा है प्रथम भंग श्रीआचारंग सूत्रमें देवल या प्रतिमा के लिए पृथ्वी काय हों उसमें मन्द बुद्धी कहा है परंतु कई आचारजोंने ग्रंथोंमें मूल सूत्रोंसे विपरीतार्थ कर अशुद्ध प्ररूपणा करी तथा सिधिला चारी कर रहे हैं कहते हैं साधुको तो कल्पतानहीं लेकिन आवक का धर्म है, जल चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप फल नैवेद्य आदि द्रव्योंसे जिन प्रतिमाको पूजना द्रव्य खरचकर मंदिर बनवाना सारंगी तबले आदि बाजनों द्वारा गाना, नृत्य करना, तीर्थ करोंकी भक्ती है इसमें महा पुण्योपार्जन होता है और मुक्ति मार्ग है, ऐसी प्ररूपना करते हैं परंतु बुद्धिवान मोक्षाभिलाषियों को निरपेक्ष होके विचारना चाहिए तीर्थका देव निरारंभीये या आरंभीये! वो सर्वज्ञपुरुष सावद्य के त्यागीये या भोगी! सचित द्रव्यका संघटा करतेये या नहीं, अचित वस्तु भी उनके लिए कोई ग्रहस्थ किसी वक्त करतातो उसमें लेतेये या नहीं ऐसा विचारना तो बाजिबै है, यदि वो श्रीवीतराग प्रभु सचित वस्तुका संघटा नहीं करते करतेये तथा करने में महा दोष समझतेये और अपने शिष्य साधू साध्वीयों को निरदोष आचार पलांतेये ऐसाही प्ररूपतेये तो फिर उन्हीं पुरुषोंकी ध्यानारूढ प्रतिमा बनाके उसमें जिन समान समझके जिस जिस वस्तुओं के वो त्यागीये उन्हीं वस्तुओंका स्पर्श कराना और भक्ति समझ उनके आगे चढाना ज्ञान है या अज्ञान! तथा हिंसा करके धर्म समझना समकित है या मिथ्यात्व! सावद्य जोग है या निरवद्य जोग! अगर द्रव्यपूजा करना निरवद्य जोग है तो साधू मुनिराज क्यों नहीं करते तथा आवक सामायक पो-

यहमें क्यों नहीं करते! लेकिन करें कैसे सावध भोगहै जिनाज्ञा बाहरहै, जब करना नहीं तो कराना और करते हुएको अनुमोदने में भर्मे कैसे होमक्ताहै जिनवल्लभ सूरिन मूलकाव्यमें कहा सो ऊपर कहाहीहै, पार्श्वचंद्र शूरिकृत ढालमें और कमल प्रभाचार्य ने महानिमीष सूत्रमें क्या कहा है अथवा लूकाजी भादि मनेकोंने द्रव्यपूजा में धर्म नहीं कहा है, तब कोई ऐसा कहे के तुम जिस भाचार्य और यतियों को मानतेही नहीं हो तो फिर उनका कथन की साक्षी क्यों देतेहो जिसका उत्तर यह है के ज्यो बचन एकादस अंगमें मिलते हुएहैं वोह सब हमको मानने योग्यहै और मानतेहैं केवल हमेंही क्या सब सम्यग्दृष्टीही एकादस अंगके अनुकूल बचन ज्योंहैं उन्हें सत्य मानतेहैं और ज्यो एकादस अंगमें प्रतिकूल बचनहै वोह असत्य मानतेहैं किन्तु मत्स्य को मत्स्य समझने से वक्ताकी सर्वविक्रता सत्यमानतां ऐसा कदापि भिन्न नहीं होमक्ता, देखो श्रीभगवती सूत्रमें कहाहै सोमन्न ब्राह्मण भगवत श्रीमहावीर स्वामी को पूछा सरसव भक्ष है या अभक्ष, तब भगवत ने उसही के शास्त्र का प्रमाण देके फरमाया हे सोमन तुमारा ब्राह्मण संबंधी शास्त्र में सरसवके दो भेद कहेहैं मित्रपरमन्न १ धान्य सरसव २ इत्यादि विस्तार पूर्वक अधिकारहै, तो भगवतनेही अन्य मतीके शास्त्रकी साक्षी देके समझाया तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अगर किसी वक्त अन्यशास्त्रकी या आचारजोंके वनापे हुए ग्रन्थोंकी साक्षी देके युक्ति पूर्वकदृष्टान्तों उदाहरण देके उसको दृढ़ प्रत्यक्ष करा दें तो क्या दोषकी बातहै, ज्यो मत्स्य बातहै वोह तो सत्यही रहैगी जी चाहे सो कहे मित्य्यात्री या सम्यक्वक्ती लोकेन सत्य वार्ताको मत्स्यही समझी जायंगी

न्यायवादी उसे शास्त्रानुकूल ही कहेंगे, जिनोक्त शास्त्रों में भी जगें जगें अहिंसा धर्म ही कहा है, धर्म हेतु जीवहत्यां दोष नहीं यह बचन तो अनार्य लोगों का है आचारंग सूत्र में खुलासा पाठ है, तथा देवल प्रतिमा के शिष्ट पृथ्वी आदि हथें उसे मन्द बुद्धि श्रीवसमां अंगमें कहा है मगर प्रतिमापूजते जीवों की हिंसा का दोष नहीं ऐसा वाक्य गणधर कृत शास्त्रों में नहीं भी नहीं है, इसहीलिए जैन धर्मानुगामीयों में नम्रता के साथ ऊपर नहीं धार कर रहे हैं हे देवानुप्रियो निरपत्नी होके विचारो श्रीजिन आज्ञा बाहर का कर्त्तव्य एकान्त सावध ही है उसमें जिनप्रणीत धर्मका लेश न समझो, मध्यभागमें भगवतनें यही कहा है मेरी आज्ञा में मेरा धर्म है इसहीलिए कहना है धर्माधर्म को यथार्थ समझकर जिन वचनोंकी आस्थाप्रतीत रखना उसही का नाम दृढ समकित है, समकितधारी जवतक सर्व शरी नहीं हुआ है तबतक खानापीना पहरना ओढ़ना स्नान करना कामभागमेना द्रव्यमंग्रदकरना मट्टी गोबर दधि दूध भक्षण तथा कुलदेवी देवताओंको पूजना मेमारिक मंगलकरना विवाह ममय या अन्य समय जिनप्रतिमा को पूजना आदि स्व पर अर्थ अनेक जिन आज्ञा बाहर का कर्त्तव्य करता कराता है लेकिन जिनाज्ञा बहिष्कृत कर्त्तव्य में धर्म कदापि नहीं समझता, स्थापक या क्षयोपमम समकित धारी तो अनेक सावध्य कार्य करना कराता है व्योपार वाणिज्य संग्राम दगाठगा पुत्रपौत्रादि का विवाह और कुसक्रम करता है परंतु जिन आज्ञा बाहर का कार्यमें धर्म नहीं, बैसेही देवलोकमें देवता जिनप्रतिमादि इर प्रकार के बाने पुनते हैं वो उनकी स्वर्ग स्थिती हे सबही को करना होता है ग्रहस्थ लाभ में द्रव्य निकालके व्याप

उमको पुष्प पच्छा यान पूर्व पश्चात हितकारी मुखकारी मोक्ष-
दायी और फलदायक शास्त्रों में कहा है, वेमाही प्रतिमा पूजनेमें
जागना चाहिए. क्योंकि दोनू ममें ऐकसा पाठ है परंतु जिस के
मोहकर्मका प्रबलोदय है उनका शास्त्र सखवत परणमें हैं वो बिप-
रीत अर्थ करक हिन्तामें या जिनभाज्ञा बाहर धर्म मरूपते हैं, और
जिन बंदन समय या चारित्र लेनेसे पेचा पच्छा है तो समझना
चाहिए ए परभवक लिए है, न्यायाश्रयी और जिन भाज्ञा में
धर्म समझने वाले जिनधर्मी तो जिनभाज्ञा बाहर धर्म कदापि
नहीं समझ सकते, उनको तो जिन बचनही अर्थ और परम
अर्थ है उनकी जिन प्ररूपित धर्मही से हाड़ की मींगी रंगरसा
है ऐसे दृढ समकित धारी जीव बहुत थोड़े होते हैं सोही स्वा-
मी भीखनजीनें दानमें कहा है ।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

दृढ समकित धर थोडला, समकित बिन शिख-
दूर । भवियण । अव्यजीवां तुमे सांभलो, पौमै बिरला
सूर ॥ भवियण ॥ दृढ समकित धर थोडला ॥ ए
आंकडी ॥ १ ॥ समकित समकित कर रद्या, मर्म
न जाणौं कोय ॥ भ० ॥ जिण घट समकित परग
में, ते घट बिरला होय ॥ भ० दृढ० ॥ २ ॥ तिण
घट समकित रूपियो, उग्यो सूरज सार ॥ भ० ॥
जिण घट हुवो चांदणों, दूरगयो अन्धकार ॥
भ० ॥ दृढ समकित धर थोडला ॥ ३ ॥

भावार्थ

कहते हैं कि दृढ समकित धारी जीव थोड़े हैं सम्यक्त्व विना शिर कहिये मोक्ष बहुत दूर है इसलिये भव्यजनों तुम सुनो सम्यक्त्व कोई विरला शूरवीर ही पाते हैं, जगतमें समकित समकित सबही कह रहे हैं लेकिन धर्म नहीं जानते, जिस पुरुष के हृदयमें सम्यक्त्व परगपी और जिसके हृदयमें सम्यक्त्व परितः सर्वतः रम्यता है ऐसे कोई विरले हलकमी है, जिनके हृदयमें सम्यक्त्व रूप सूर्योदय हुआ है उनके मिथ्यात्व मयी अन्धकार दूर हाके पलौकिक प्रकाश हो रहा है लेकिन ऐसे बहुत थोड़े हैं उदाहरण देके कहते हैं जैसे सुणों ।

॥ ढाल ॥

सरसर कमल न नीपजै, बन बन अगर न होय ॥ भ० ॥ घरघर सम्पति न पामिये, जन जन पंडित न होय ॥ भ० ॥ दृढ ॥ ४ ॥ गिरिवर गिरिवर गज नहीं, पौल २ नहीं प्रासाद ॥ भ० ॥ कुसुम कुसुम परिमल नहीं, फल फल मधुर न स्वाद ॥ भ० दृढ ॥ ५ ॥ सबहि खांन हीरा नहीं चन्दन नहीं सबवाग ॥ भ० ॥ रत्न रासि जिहां तिहां नहीं, मणिधर नहीं सब नाग ॥ भ० ॥ ६ ॥ सबहि पुरुष शूरा नहीं, सगला नहीं ब्रह्म-चार ॥ भ० ॥ नारी नहीं सर्व शु-लक्षणी, विरला गुण

भंडार ॥ भ० दृढ० ॥ ७ ॥ सगला गिर सुवर्ण में
 नहीं, नहिं कस्तूरी ठामों ठाम ॥ भ० ॥ सबही सीप
 मोती नहीं, केशर नहीं गांमो गांम ॥ भ० दृढ०
 ॥ ८ ॥ सबनै लब्धिन ऊपजै, सघला मुक्ति न
 जाय ॥ भ० ॥ सघला सिंह न केशरी, साधू किहां र
 जमात ॥ भ० दृढ० ॥ ९ ॥ तीर्थकर चक्रवर्त्तनी,
 पदवी बड़ी पिछाण ॥ भ० ॥ सघला जीव पांमें
 नहीं, तिम पण समकित जाण ॥ भ० ॥ दृढ सम-
 कित घर थोडला ॥ १० ॥

भावार्थ ।

सरोवर द्रव तलावादि सब ही में कमल सहश्रवल तथा
 सामान्य कमल नहीं होते ॥ १ ॥ सबवनोपवन बगीचोंमें अगर
 वृक्ष कृष्णागरादि महा सुगंधी वृक्ष नहीं होते ॥ २ ॥ सब
 ही शृङ्गारों के वरमें सम्पत्ति कहिये ऋद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥
 सब ही मनुष्य पंडित याने सत्सामय जानने वाले नहीं होते
 ॥ ४ ॥ सबही पर्वतोंमें हाथी नहीं होते ॥ ५ ॥ दरवाजे र
 ऊपर महालायत नहीं होती ॥ ६ ॥ सर्व जातिके पुष्प सुगंधित
 नहीं होते ॥ ७ ॥ संपूर्ण जातिके फल मधुर नहीं होते ॥ ८ ॥
 सबही खानोंमें हीरकादि बहु मूल्य उत्तम रत्न नहीं होते
 ॥ ९ ॥ सब बनोपवनमें चन्दनका वृक्ष नहीं मिलता ॥ १० ॥
 बहुमूल्य रत्नोंकी राशि सर्वत्र नहीं होती ॥ ११ ॥ सर्व सर्प
 मणिधर नहीं होय ॥ १२ ॥ सबही पुरुष सूरवीर याने सर्व

कुशल नहीं हाँसकते ॥ १४ ॥ सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य भारी
 नहीं होते ॥ १५ ॥ सर्व स्त्रियाँ सुनत्तणी नहीं होती ॥ १६ ॥
 सब ही गुणवान नहीं हाँते गुणी विरले ही होते हैं ॥ १७ ॥
 सर्व पर्वत सुवर्णपथ नहीं ॥ १८ ॥ जगह जगह कस्तूरी नहीं होती
 ॥ १९ ॥ सब ही सीपोंमें मोती नहीं ॥ २० ॥ ग्राम ग्राममें
 केशर नहीं ॥ २१ ॥ सबही तपस्वी लब्धि धारक नहीं होते ॥ २२ ॥
 सब प्राणी मोक्ष नहीं जाते ॥ २३ ॥ केशरीसिंह सबही नहीं
 होते ॥ २४ ॥ मंडल और जगताओं में सब साधू नहीं होस-
 कते ॥ २५ ॥ तीर्थङ्कर चक्रवर्त्त की पदवी सब जीव नहीं
 पासकते ॥ २६ ॥

ऐसे ही सब जीवोंको सम्यक्त्व मयी महा अमौल्य रत्नकी
 प्राप्ति नहीं हो सकती सम्यक्त्व का पाणां तो महा मुश्किल है,

॥ ढाल ॥

नवौही पदारथ मांहिलो ऊंथो, सरथै ज्यो एक
 ॥ भ० ॥ तोहि मिट्ठ्यात्वी मूल गो, भूला भरम
 अनेक ॥ भ० दृढ० ॥ ११ ॥

भावार्थ ।

जीव चेतना सत्तण १, अजीव अचेतना सत्तण २, पुण्य
 शुभ कर्म ३, पाप अशुभ कर्म ४, आश्रय पुण्य पाप का कर्त्ता
 ५, सम्बर अशुभ कर्मों का रोकता ६, निर्जरा अशुभ
 कर्म को बिलेर कर आत्म प्रदेशों को उज्ज्वल करना ७, वन्ध

शुभ अशुभ कर्म का बन्ध ८, मोक्ष शुभाशुभ कर्मों से सर्वतः छुटकारा ९, इन नव पदार्थों में ८ आठकों यथार्थ सरथे और १ एक पदार्थ को शङ्का सहित सरथे तो भी मिथ्यात्वही है, अनेक जीव भ्रमसें भूल रहे हैं, मिथ्यात्वी १० पूर्व से किंचित् कम तक पढ़ जाते हैं, लेकिन सम्यक् नहीं स्पर्शते मिथ्यात्वी ही हैं,

॥ ढाल ॥

दशों ही मिथ्यात्वमांहिलो, बाकीरहै कदा येक
॥ भ. ॥ तोही गुणठाणों पहलो कह्यो, समझो
आंग विवेक ॥ भ० द्वि० ॥ १२ ॥

भावार्थ ।

जीवको अजीव सरथे तो मिथ्यात्व १, अजीवको जीव सरथे तो मिथ्यात्व २, धर्म को अधर्म सरथे तो मिथ्यात्व ३, अधर्म को धर्म सरथे तो मिथ्यात्व ४, साधूको असाधू सरथे तो मिथ्यात्व ५, असाधू को साधू सरथे तो मिथ्यात्व ६, मार्ग को कुमार्ग सरथे तो मिथ्यात्व ७ कुमार्ग को मार्ग सरथे तो मिथ्यात्व ८, मुक्तिको अमुक्ति समझै तो मिथ्यात्व ९, अमुक्तिको मुक्ति सरथे तो मिथ्यात्व १०, यह दश प्रकार के मिथ्यात्व श्रीठाणोंगसूत्रके दसमें ठाणोंमें कहे हैं, उन में से नव बोलों को सत्य और एक को असत्य सरथे तो भी प्रथम गुणस्थानीही है इसी लिये हे भय्यजनो विवेक को हृदयमें ल्याके समझो,

॥ ढाल ॥

नवतत्व उलख्यां बिनां, पहरे साधुगे भेष
 ॥ भ. ॥ समझ पड़ै नहिं तेहनें, भारी हूवै विसेख
 ॥ भ.द्रिद ॥ १३ ॥ लीचीटेके छोड़ै नहीं, कूडो करै
 पत्तपात ॥ भ. ॥ कुगुरां भरमाविया, बहुला बूडा-
 जात ॥ भ० दृढ० ॥ १४ ॥

भावार्थ

नव तत्व को जाणें बिनां कई मनुष्य साधुका वेश पहर कर साधु बनजाते हैं लेकिन उनको साधुके आचार क्रिया शास्त्र वचसुं की समझ नहीं पड़ती सिर्फ भेषधारी द्रव्य साधु हैं, रजो-हरण चंदरपात्रादि साधुका भेष अनन्त बार ग्रहण किया और गौतम स्वामी जैसी क्रिया मिथ्यात्व पनेमें करके ग्रैवेक करपाती तत्क अनन्तीवार जीवजापहुंचा परंतु कुछ भी मोक्ष फलितार्थ न हुआ ।

मोहदश मिथ्यात्व के रागमें जिस छोटे पत्तको पकड़लियां फिर उसको न छोड़ना इस का कारण कुगुरु सेवनां ही है जैसे नीति शास्त्रमें भी कहा है यतः ।

मतिदोलायते पश्यं सताम्भपि शतोभिरित्यादिक ज्यो कहा है कि यह १०० सो आदमी जिस बातको कहै उस वक्त सत्पुरुषों की मति याने बुद्धि दोलायमान याने चंचल चपल बुद्धि से समुद्रमें भ्रमर की तरह भ्रममें पड़ कर संसार समुद्रमें बहुत

से इतने हैं इसमें निरर्थों का मार्ग, केवल शिव मार्ग है सो कहने हैं कि—

॥ ढाल ॥

दान शीलतम भावनां शिवपुर मार्ग चार
॥ भ० ॥ दान सुपात्र जन्यां विना नहीं सरै
गरज लियार ॥ भ० दृढ० ॥ १५ ॥

भावार्थः

सुपात्र दान १ प्रह्वय २ उपवामादि तप ३ और निर्मल याने शुद्ध भावना ४ यह चार शिव कहिये मोक्षके मार्ग हैं, इसमें जो पहले सुपात्र दान कहा है, उनको यथार्थ समझे विना अर्थात् पहले तो सुपात्र का जानना, सुपात्र किसे कहते हैं, कि ज्यो प्राणी मात्रको किसी तरह बाधा न उपजावै, उन ही सुपात्रोंको दान कैसा, किस तरह, किस भावसे देगा, और देणोंमें क्या फल प्राप्ती होती है इत्यादि सब बातोंका समझे विना कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, इसी लिये कहा है—

॥ ढाल ॥

नय तत्त्व सूधा धारियां, छूटै दसों ही मिथ्या-
त्व ॥ भ० ॥ समकित आवै इणविधै, मानूं सूत्रनी
वात ॥ भ० दृढ० ॥ १६ ॥

भावार्थ ।

इस लिये कहना है मिश्रवरो नवतत्वकी शुद्ध याने यथार्थ धारणा होनेसे ज्यो दश प्रकार के मिश्रयात्र हैं उनको साग करना, मिश्रयात्र के सागमें ही सम्यग्दर्शनका लाभ होता है ऐसा सूत्रोंमें कहा है सो वचन मानूं सांही कहा है ।

॥ ढाल ॥

देव गुरु मिश्रमानें नहीं, मिश्र न मानें जिन धर्म ॥ भ० ॥ यां तीनानें जांनै निर्मला, मिश्रों तिणारो भर्म ॥ भ० दृढ० ॥ १७ ॥

भावार्थ

देव १ गुरु २ धर्म ३ यह तीनों शुद्ध अर्थात् निर्मल गुण संयुक्त हो, देव श्री अरिहन्त संपूर्ण ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण सहित, गुरु निर्ग्रन्थ शुद्ध साधू पंच महाव्रतधारी, धर्म शुद्ध जिनाज्ञामय आर्हिमा संजम तपादिक, ये ज्यो तीनों है सो सदा सर्वदा निर्मल है, गुण अवगुण सहित मिश्र नहीं है सावद्य निरवद्य मिलके मिश्र नहीं है, कदापि मिश्र नहीं होसक्ता सो कहा है ।

॥ ढाल ॥

समकित आयां नीपजै, साथ श्रावक नों धर्म ॥ भ० ॥ शिव रमणी बेगा वरो, दृष्टै आठोंहीं

कर्म ॥ भ० दृढ० ॥ १८ ॥ समकित विन सुध
पालियो, अज्ञान पणें आचार ॥ भ० ॥ नवग्रैवे-
क ऊंचोगयो नहीं सरी गरज लिगार ॥ भ०
दृढ० ॥ १९ ॥

भावार्थ ।

सम्यक्त्वके पानेंसे साधू भावक का धर्म होता है इसलिये
सम्यक्त्व १ चारित्र २. दोनों धर्म होणेंसे मुक्ति मयी ज्यो स्त्री
है वो प्राप्त होती है, और भ्रष्ट कर्म क्षय होते हैं सम्यक्त्व विना
संनमकी शुद्ध क्रिया पालन कर जीव नवग्रैवेयक स्वर्ग तक गया
परन्तु कुछ गरज नहीं सरी, मिट्याली ही रहा ।

॥ ढाल ॥

पाखंडियारी संगत करै, जिण लोपी जिनवर
आण ॥ भ० ॥ समकित जाय शङ्का पड्यां, नन्दन
मणियारा जिम जाण ॥ भ० दृढ० ॥ २० ॥

भावार्थ ।

समकित पाके दृढना रखना अति दुर्लभ है बाहर क्रिया
पालने वाले बेपधारी द्रव्य लिङ्गी मानूं इस समकित मयी रत्नके
लुंटेरे हैं, उन पाखंडियों की संगत से सम्यक्त्व रूप अमूल्य
मृद्धिका विनाश होता है पाखंडियों की संगत करने की आज्ञा
नहीं है, ज्यों समदृष्टी पाखंडियों का संग परिषय करता है वो ह

जिनेश्वरकी आज्ञाको लोपने हैं उसका परिणाम खराब है जिन वचनों में शङ्का कँखा उत्पन्न होती है और समकित पाना दुर्लभ होजाता है, जैसे नन्दन मणियार पाखंडियों की संगति करके समकित खोयकर तिर्यच गतिपाई उसका अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र १३ में अध्ययनमें विस्तार पूर्वक है, इसी अवर्षणी के चतुर्थ कालमें मगधदेशान्तर्गत राजगृही नाम नगर था वहाँ श्रेणिक नाम महाप्रतापी और न्यायशील नरपति था उस नगर में एक धनाढ्य सेठ नन्दन मणिहार था एकदा उस राजगृही नगरीके निकट ईशानकूणमें गुणशिल नामा वागया वहाँ भगवन्त श्रीमहावीर स्वामी पधारे तब नगरीके बहुत लोग वन्दना नमस्कार करने व्याख्यान सुनने गये नन्दन सेठ भी गया और यथा योग्य जगहे देख बैठा भगवन्तकी बानी सुनने लगा भगवन्तने लोकालोकके भाव प्रकासे संसारको अनित्य और असार कहा साधु श्रावक धर्म बताया तब नन्दन सेठ सुनके असन्तुष्ट हुआ प्रतिशोध पाया और श्रीभगवानसे द्वादश विध श्रावक धर्म अंगीकार किया वन्दना नमस्कार करके अपने घर आया प्रिय धर्मी और दृढ़ धर्मी हुवा सामायक पोषह प्रति क्रमणादि श्रावक धर्म करता रहा भगवन्त विहार कर जन पद (देशों) में विचरे पीछेमें श्रावक नन्दनने पाखंडी हीनाचारियों की संगतमें सम्यक्त्वके पर्यवों को हीनकर मिथ्यात्व के पर्यव बढ़ाये जिन वचनोंमें शङ्का कँखा उत्पन्न हुई एकदा जेष्ठमासमें तीन उपवास कर पोषधशालामें पोषध करता था रात्रीके समय धर्म जागरण करते करते असन्त पाणीकी पियासालगी तब विचारनेलगा धन्य है उन पुरुषों को जिन्होंने कूवा बावडी तलाव

कराये और कराते हैं बोही जीव मनुष्य जन्म सफल कर रहे हैं तो मैं भी प्रातःकाल सूर्योदय होनेसे पोषध पारकर राजा श्रेणिक के पास बहुमूल्य भेटणा लेकर जाऊँ और राजाकी इजाजत ले नगर बाहर ईशानकूण में विवाहगिरपर्वतके पास नन्दापुष्करणी बनाऊँ ऐसा विचार कर सूर्योदय होनेसे पोषध पार बहुमूल्य भेटणा लेकर गया और राजा श्रेणिकसे जमीन की परवानगी ले अपनी इच्छा माफिक बड़ा भारी बाग बनाया बागके मध्य भागमें नन्दापुष्करणी बनाई और उसके चारों तरफ विशाल मकानात बनाके बहुत लोगोंके आरामके लिए औपशालय १ भोजनालय २ मंजन, स्नानालय ३ दानशाला ४ वनवाके घनेकों को साता उपजाने लगे और अनेक वैद्य पुत्रों को उपस्थित किया लाखों रुपयोंका खर्च लोगोंके आरामके लिए करता रहा बहुत लोग नन्दनकी प्रशंसा करनेलगे और कहने लगे मनुष्य जन्म सफल तो नन्दन सेठका है ऐसा सुनके नन्दन भी बहुत राजी होता रहा, एकदा समय नन्दन माणहारके शरीरमें १६ प्रकारके रोग उत्पन्न हुए अत्यन्त वेदनासे पीड़ित हुआ अनेक वैद्य आये बहुत औपधियां करी किन्तु रोग न गया मरणा समय कालकर अपनी बनाई हुई नन्दापुष्करणी में मीढकपर्ण उत्पन्न हुआ मनुष्य जन्म खोके तिर्यच गति पाई, यगीचे में लोग आये तब नन्दनको प्रशंसाकरें कहें मनुष्य जन्म सफल नन्दनने किया है ऐसा लोगोंके मुखसे सुनके मीढक सोचने लगा नन्दन कौन था ये क्या बात है ऐसा विचारने और ईहाया देनेमें मीढकको जाति स्मरण ज्ञान हुआ तब अपना पिछला भव देखा देस कर विचारणे लगा अहो इति आश्चर्ये

कर्मगति विचित्र हैं मैं कौन था और अब कैसा हूँ मैं था एक बड़ा भारी प्रभाविक पुरुष और द्वादश व्रतधारी श्रावक लेकिन पाखंडियों की संगति में समकित और देशव्रत गमाकर अब भीड़क हुआ हूँ तो अब द्वादश व्रत अंगीकार कर तपस्या करके कर्म काट आत्म कल्याण करूँ, ऐसा विचारके व्रत धारण कर तपस्या करने लगा वलै २ पारशां करने लगा अनेक कष्ट सहन कर कालक्षेप करता रहा, एकदा राजगृही नगरीके बाहर गुणशिल नामा बागमें श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर स्वामी पधारे पर्वदा बन्दने गई उस समय पुष्करणीके नजीक लोगोंसे भगवद्गमन की खबर सुनके भीड़क अत्यन्त खुश हुआ पुष्करणी से निकल भगवन्त को बन्दने जाते रास्तेमें राजाश्रेणिक के घोंडेके पैरके नीचे आगया, तब जाने अनेका असमर्थ हुआ तब एकान्त होकर शुभ भावना भाने लगा भगवन्तको नमस्कार कर विचारने लगा हे प्रभो आप सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो, मुझे आपका शरण है और मुझे आपकी सान्त्तिसे यावत् जीवित पर्यंत चारों प्रकारके आहार भोगनेका त्याग है, ऐसा कहके अपने पाप कर्मोंकी निन्दा करता हुआ चारगाते चौरासी लक्ष जीवा योनिको खमाता हुआ काल समय मरण पाके प्रथम देवलोक में दर्दुर नामा विमानमें ४ पल्यकी स्थितिमें उत्पन्न हुआ, देव संबंधी आयुष्य और भवक्षय कर महा विदेहक्षेत्रमें धनाढ्य के घर जन्म ले बाल भावनिवृत्त कर दीक्षा अवसरसे दीक्षा ले तप कर केवल ज्ञान पाकर सकल कर्मक्षय कर मुक्तिजावेगा, ये अधिकार विस्तार पूर्वक छटाअंग शिज्ञातासूत्रमें हैं ।

अब न्यायाश्रयी और मोक्षाभिलाषी जीवोंको विचार

करना चाहिए नन्दन मणिहार की समकित कैसे गई ? सूत्रमें खुलासा पाठ है पाखन्डी हीनाचारियों की संगतिसे सम्यक्त्व के पर्यायहीन हुए और मिथ्यात्वके पर्याय बढे, यदि संसारी जीवोंको साता उपजाने से जिनप्ररूपित धर्म होयतो समकित कैसे जासक्ती है और नन्दन तिर्यचगतिका बन्धन क्यों करता "किन्तु नहीं नहीं कदापि नहीं" जिन आज्ञा बाहरका कर्तव्य से कदापि धर्म नहीं होता, आपसमें खाना खिलाना साता उपजानादि कार्य संसारी व्यवहार है मोक्ष मार्ग नहीं है, श्री सुयगडांग के अध्ययन चौथा उद्देशमें कहा है सातादीयां साता होय ऐसी प्ररूपणा वाला भार्य मार्ग से भ्रमलग, समाधिसे विमुख, जिन धर्मकी निन्दा करण हार, छोडे सुखके लिए बहुत सुखों का हारने वाला, असत्य पत्नी, अमोक्ष का कारण, और लोह वणिक की तरह बहुत पश्चात्ताप करेगा, तथा कहा है दान की प्रशंसा करना प्राणी जीवों का वध याने प्राणघात को बाँछनेवाला है और मर्ना करने से अंतराय है, इसे लिये शुद्ध साधू तो वर्तमान समय टोना न कहें, और जैसा धर्म जिनेश्वर देवोंने कहा है उसीका उपदेश और आदेश देज्ञान दर्शन चारित्रादि ज्यो मुक्ति मार्ग अध्ययन श्रीउत्रराध्ययन में कहा है वैसाही कहें तथा जिनाज्ञा बाहर कदापि धर्म नहीं समझे उसही का नाम दृढ सम्यक्त्व है ।

॥ ढाल ॥

काम देव अरणिक जिसा, श्रावक दशूही वखाण
॥ भ ॥ देव डिगाया नहीं डिग्या, निःशंक रह्या दृढ-

जाण ॥ भ ॥ दृढ ॥ २१ हाडमज्जा रंगी जेहनी, रुचि-
या प्रवचन सार ॥ भ ॥ अरिहन्त वचन अंगी
करै, धन्य त्यांरो अवतार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २२ ॥
ज्ञानदर्शिन चारित्र तप बिना, धर्म न जाण
लिगार ॥ भ ॥ इम सांभल नर नारीयां, मनमें
कीज्यो विचार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

कामदेव और अरणिक आदि दश श्रावक भगवन्त श्री महावीर स्वामी के प्रिय धर्मों औदृढ धर्मों हुए हैं जिनका अधि-
कार श्री उपासक दसा सूत्र में है उनको अनेक कष्ट हुए हैं
देवताओं ने परीक्षा निमित्त उपसर्ग दे के धर्म छुड़ा ने के
प्रयत्न कीए हैं तथा किसी को खोने उपसर्ग दीया है परंतु ज्यो
निःस्नेही दृढ धर्मों श्रावक थे वो धर्ममें चले नहीं तथा मोह अनुक-
म्पा नहीं की जिन की प्रशंसा स्वयं भगवानमें की है, और
ज्यो वचाने के लिए खडे हुए, और देव गुरुसमान माता को
मारने वाले को पकड़ने लगे उनका पोपह भंग हुवा ऐसा उपासक
दशा में कहा है, इस ही लिए कहना है ।

हे महानुभावो पत्तपात छोड कर विचारो स्वामी भीखन-
जी ने कैसा मुक्ति मार्ग कहा है ज्यो जिनेश्वर देव ने कहा
वोही या और कोई दूसरा ? यदि वो ही कहा है तो हीनाचा-
रीयों के कहने से स्वामी के निन्दकमतवनो, अगर ज्यो अपनी
आत्मोन्नती करना चाहते हो तो येक बार स्वामी कृत ग्रंथ ढाल
स्तवन पढो उनका भावार्थ समझो, पंच आश्रवद्वार और अठारह
पापस्थानकसेने सेवाने और अनुमोद ने में भगवन्त ने एकान्त

पाप ही कहा है हिंसा करने में कदापि धर्म नहीं होता, जैसा अपने को कष्ट होय वैसा दूसरे जीवों को भी होता है चलते हिलते ही जीव नहीं हैं संसारमें भगवत ने ६ प्रकारके जीव बताये हैं-पृथ्वी १ पांछी २ अग्नी ३ वायु ४ वनस्पती ५ व्रत ६ जिसमें पृथ्व्यादि पांचों कार्यों का विनाश कर सिर्फ व्रत जीवों को साता देने में धर्म कैसा हो सकता है यदि कोई कहै हमारे परिणामतो साता देने के हैं वो अच्छे ही हैं तो वोह उनकी भूल है अज्ञान है, ज्ञानी पुरुष तो छड़ू काया को मारने में एकान्त पाप कहा है जीव मारने से पुन्य बंध नहीं कहा है ऐसा ज्ञान होना चाहिए-ए उक्तं च० “पदपंताणं तत्रोदया” याने पहले ज्ञान और पीछे दया कही है, तात्पर्य यह है के पहले जीव अजीव पुन्य पापादि नवों पदार्थों का ज्ञान पना चाहिए, जैसा असंख्यप्रदेशी जीव व्रत में है वैसा ही स्थावरमें है जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य पर तलवार लेकर गला काटते समय विचार करे के मेरा परिणामतो मारने का नहीं है सिर्फ तलवार की परीक्षा करने का है तो क्या उसको मनुष्य मारने का पाप नहीं लगेगा, वैसे ही कोई कहै हमारे परिणाम तो एकेन्द्री जीवों को मारने का नहीं है सिर्फ व्रत जीवों को साता देने का है, तो क्या ज्ञानी पुरुष उसे अच्छा समझ गत्ते हैं नहीं नहीं कदापि नहीं शास्त्रमें तो कहा है “यह नाखीणंमारं जे ए हिंसही किंचियं” ज्ञान पाने का सार तो यही है ज्यो किंचित मात्र भी किसी जीवों की हिंसा न करे और न धर्म समझें, जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है वोही कर्त्तव्य करने कराने और अनुमोदन में धर्म है वाकी सब संसारी व्यवहार है, धर्म पुन्य नहीं, ऐसी ही प्ररूपन स्वामी भीखनजी ने को है ।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

॥ दोहा ॥ आज्ञा श्री अरिहन्तनीं, निर्वद्य दान
में जांण ॥ सावद्य दाननें स्थापनें , मूरख मांडी
ताण ॥ १ ॥ मिश्र धर्म प्ररूपनें, नहीं सूत्र नों
न्याय ॥ लोकांनें गेरै फन्द में, कूडा चोज लगाय
॥ २ ॥ अव्रत आश्रव में कहयो, श्रीजिन मुख सें
आप ॥ सेयां सेवायां भलो जाणियां, तीनू करणां
पाप ॥ ३ ॥ व्रत धर्म श्रीजिन कहयो, अव्रत अधर्म
जांण ॥ मिश्र मूल दीसे नहीं, करै अज्ञांनी तांण ॥ ४ ॥

भावार्थ ।

प्रिय पाठको ज्ञान नेत्रों द्वारा देखो श्री अरिहन्त महा-
राज की आज्ञा निर्वद्य दान में है, सावद्य दान में आज्ञा नहीं है,
और जिहां श्री अरिहन्तों की आज्ञा है वहां ही धर्म है, लेकिन
मूर्ख लोक लोकों से मिलती प्ररूपना करके सावद्य दान को
स्थापते हैं याने सावद्य दान देने दिलाने में जिन प्ररूपित धर्म
समझ रहे हैं कहते हैं जीवों की हिंसा हुई तथा आज्ञा बाहर
का कार्य कोया वो पाप है, और सावा उपजाई वोह धर्म है, इस
रीति से दोनू मिल के मिश्र हुवा, इस तरहें उपदेस देक भोल
लोकों का फन्द में गेरते हैं अनेक द्रष्टान्त देते हैं लेकिन यह
नहीं सोचते के दान लेने वाला अव्रती है या सर्व व्रती ? यदि
अव्रती है और उसे वा लीया हुआ दान भोग नें से अव्रत पुष्ट

होगी या व्रत अगर अव्रत सेता है तो अव्रत सेवाने वाले को धर्म कैसे होगा, श्री जिनराज ने तो अव्रत आश्रव कहा है, अव्रत आश्रव द्वारा पाप का बन्ध कहा है, अव्रत सेयां सेयां भलो जाणीयां एकान्त पाप है, तीर्थकरों ने व्रत धर्म कहा है और अव्रत को अधर्म कहा है, किन्तु व्रत अव्रत दोनू मिलके मिश्र नहीं कहा है, जिस को व्रत अव्रत का ज्ञान नहीं है वो मूर्ख लोक पक्ष में पड़ेके व्यर्थ तांछ यानें जिद करते हैं, देखो भगवान ने अठारह पाप कहा है सो किञ्चित् सेने सेवाने से और भला जाणने में धर्म नहीं हैं, ।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार, सेयां नहीं धर्म लि-
गार, शंका मत आणज्यो ए ॥ सांची करि जाणज्यो
ए ॥१॥ ज्यो थोड़ो घणों करै पाप, तिणयी होय
संताप, मिश्र नहीं जिन कह्यो ए ॥ सम दृष्टी सर-
धीयो ए ॥२॥ केई कहै अज्ञानी येम, श्रावक पो-
शां नहीं केम, भाजन रतनां तणों ए ॥ नफो अ-
ति घणों ए ॥३॥ तिणरो नहीं जाणें न्याय, त्यानें
किम आणीजेठाय, बैधो घालीयो ए ॥ भगडो
भालीयो ए ॥४॥ हिव सुणज्यो चतुर सुजाण,
श्रावक रतनां री खान, व्रतां करि जाणज्यो ए ॥
उलटी मत जाणज्यो ए ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

माणाति पात १ (जीवहिन्सा) मृषावाद २ (झूठ बोलना) अदत्ता दान ३ (चोरी करना) मैथुन ४ (कुशील सेना) परिग्रह ५ (द्रव्य रखना) क्रोध ६ (क्रोधकरना, मान ७ (अभिमान, दर्पकरना) माया ८ (कपटाई करना, धूर्तता) लोभ ९ (धनकी लालसा इच्छा,) राग १० स्नेहकरना) द्वेष ११ (परायेका बुरा चिन्तना) कलह १२ (लड़ना झगड़ना) अव्याख्यान १३ (झूठवार्ता कहना) पिशुन १४ (चुगली करना) पर परिव्राद १५ (परायेकी निन्दाकरना) रति अरति १६ (मनसा माफक वस्तु पे खुमहोना और अनिच्छित वस्तु पे नाराजहोना) माया मृषावाद १७ (कपट सहित झूठबोलना) मिट्या दारिशन शल्प १८ (मिट्या शरधनां) ये अठारह पाप कहे हैं जिन्हें सेवनेसे किंचित् मात्र धर्म नहीं है ये सत्य जानना चाहिए इसमें जराभी शंका नहीं रखना इन अठारों पापों में में थोड़ा या बहोत पाप करै वो संताप दायक है यदि थोड़ा करै थोड़ा दुःखः दायक है और बहोत करै बहोत दुःखः दायक है, किन्तु ये नहीं होमकूना के बहोत करे वो पाप, और थोड़ाकरे वो धर्म; जिनेश्वर ने येह नहीं कहा; अगर थोड़ा पाप करने से ज्यादा धर्म होतो थोड़ा पाप करलेना चाहिये या पाप और धर्म दोनों मिलकर मिश्र होता है कदापि मिश्र नहीं ऐसा शरधना सम्पक द्रष्टीके मतन है, कई अज्ञानी कहते हैं श्रावक को च्याख आहारों से पाषना चाहिए क्योंकि श्रावक व्रतमयी स्त्रनों की खान है याने भोजन है उमें खिलाने से बहोत नफा है, श्रावक भोजन करक व्रत

पचखान करेगा तो जिमानेवालेको भी उसका हिस्सा आवेगा इसलिए आशक को खिलाना धर्म है ऐसी कहते हैं, किन्तु ये नहीं विचारते आशक आहार कीया सो ब्रत या अभ्रत है यदि अभ्रत ऐसा है तो सेवाने वालों को धर्म कैसा होगा, सो ब्रत सेता है सो रतन है या अभ्रत सेता है सो रतन हैं। उस के पास ब्रत मयी रतन है या अभ्रत मयी ऐसा विचारना आवश्यक है भव द्रष्टान्ति कहते हैं।

॥ ढाल ॥

कोई सुख वागमें होय, आम्ब धतूरो दोय, फल नहीं सारखा ए ॥ कीज्यो पारखा ए ॥ ६ ॥
आम्बा सुं लिव ल्याय, सींचे धतूरो आय, आसा मन अति घणीं ए ॥ आम्ब लेवण तणीं ए ॥ ७ ॥
आम्ब गयो कुमलाय, धतूरो रह्यो दिढाय, आवी नें जोवे जरे ए ॥ नयणां नीर भरे ए ॥ ८ ॥
इण द्रष्टान्ते जाण, आशक ब्रत आम्ब समान, अब्रत अलगी रही ए ॥ धतूरा समकही ए ॥ ९ ॥
सेवावे अब्रत कोय, ब्रतां सामों जोय, ते भूला भरम में ए ॥ हिन्सा धर्म में ए ॥ १० ॥ अब्रत से बंधै कर्म, तिणमें नहीं निश्चै धर्म, तीनूं करण सारखा ए ॥ विरला पारखी ए ॥ ११ ॥ खाधां बन्धे

कर्म, खुवायां मिश्र धर्म, ए झूठ चलावीयो ए ॥
 मूरख मन भवियो ए ॥ १२ ॥ मिश्र नहीं सा
 ख्यात, ते किम शरधी जे बात, अकल नहीं मूढ
 में ए ॥ पड़िया रूढ में ए ॥ १३ ॥ पोटै नहीं
 बुद्धी प्रकास, बलि लाग्यो कुंठारोंपास, निर्णय
 नहीं करै ए ॥ तेभव सागर परै ए ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

जैसै किसी वागमें आम्र और धतूरे दोनों तरह के दर-
 खत हैं किन्तु उनके फल एकसा नहीं हैं, कोई मूर्ख मानव
 धतूरे को आम्र का दरखत समझकर पानी देने लगा, और
 आस करने लगा ऋतुसमय मुझे यह वृक्ष बोहीत मिष्ट आम्र
 देगा ऐसा खयाल से हमेसा धतूरे को पानी आम्र का वृक्ष
 समझकर देता रहा तब आम्र वृक्ष सूख गया और धतूरा प्र-
 फुलित होगया, कितनेक समय बाद धतूरा के समीप आके
 आम्र देखने लगातो येकभी नहीं मिला तो असन्त दुखित
 होके रोने लगा, इस दृष्टान्ति करके बुद्धि मानो को समझनां
 चाहिए आम्र समान व्रत और धतूरा समान अव्रत है, तब
 व्रतकी आस से अव्रत सेने सेवाने से व्रत मयी आम्र फल
 कैसे होगा-अव्रत सेवाने से तो अव्रत रूप धतूरा फल की प्रा-
 प्ती होगी, अव्रत सेने सेवाने में तो अशुभ कर्म का ही बन्ध
 होगा, श्रावक के त्याग है वो व्रत हैं, जिस सावध कार्य का
 त्याग नहीं हो वो अव्रत है, परं दोनों मिलके मिश्र ऐसा नहीं,

होसकता अन्नतका सेना वो प्रथम करण, सेवाना वो दूसरा करण, सेनेहुएको अच्छा समझना ए तीसरा करण है, जिस कर्तव्य से पापकर्म प्रथम करण से लगता है तो द्वितीय और तृतीय करणसे धर्म ए कैसे होसकता है, खानेवालोंको पाप, और खिलाने वालों को धर्म, ऐसी मिथ्या प्ररूपणें वाला मूर्ख और अज्ञान लोगों को अच्छे लग रहे हैं, उन निबुद्धियों को स्वयंतो बुद्धिमयी प्रकाश नहीं, और कुगुरुओं को मिथ्या शरधामयी जालमें फसके भवभ्रमणरूप कूवा घाने कूपमें पड़ रहे हैं ।

॥ ढाल ॥

साधू संगति पाय, सुणे येक चित्त लगाय,
पक्षपात परिहरे ए, ज्यों खबर बेगी परै ए ॥ १५ ॥
आनन्द आदिदेजाणं, श्रावक दसूं बखाण ते
पडिमा आदरी ए, चरचा पाधरी ए ॥ १६ ॥ जे जे
कीयाछि त्याग, आणमिन बैराग, तेकरणी निर
मली ए, करीने पूरेली ए ॥ १७ ॥ बाकी रह्यो
आगार, अन्नत में आण्यों आहार, अपणी जाति
में ए, समझो इणबातमें ए ॥ १८ ॥ अन्नतमें दे
दातार, ते किम उतरै भवपार, मार्ग नहीं मोखरो
ए, तांदो इणलोकरो ए ॥ १९ ॥ दाता अन्न सुद्ध
पाय, पाय अन्नत में त्याय, ते किम तारसी ए,

किम पार उतारसी ए ॥ २० ॥ उपासक उवाई अङ्ग,
बलि सुयगडाङ्ग, सूत्रथी ऊवरी ए, अव्रत अलगी
करी ए ॥ २१ ॥ जूनों गढ मित्थ्यात त्यांरै किम बैस
ए बात, कर्म वणां सही ए, समझ पडै नहीं ए ॥ २२ ॥

॥ भावार्थ ॥

इस ही लिए कहना है निर्लोभी निग्रंथ साधूओंकी संगति
पाके दान का अधिकार पक्ष पात को छोड़कर सुनिष्ट तब
सुपात्र और कुपात्र दानका फल मालूम होजायगा, देखो
आनन्दादि दम श्रावक प्रतिमा याने प्रतिग्या करी वो धर्म है
और ज्यो आगार रहा वो अधर्म है, साधूवत गौचरी करके
आहार पानी अपनी जाति में से ल्याके भोगते थे वो अव्रत में
हैं, वैराग्य भाव से ज्यो त्याग करते थे वो व्रत संवर था, तो
दातार उन्हें अव्रत सेवानाथा या व्रत ? यदि अव्रत सेवाताथातो
अव्रत सेवाने में धर्म कैसे होवेगा, और वो कार्य उन्हें संसारमयी
समुद्र से पार कैसे उतार सकता है, उपासगदसा उवाई सूत्र
और सुयगडां अंगमें व्रत अव्रत का निर्णय खुलासा कहा है
लेकिन दीर्घकर्म जीव तबभी समझते नहीं हैं ।

॥ ढाल ॥

आगम नी दे साख, श्री वीर गयाछि भाख,
भविष्यण निर्णयकरै ए, भव सायर तिरे ए ॥ २३ ॥
देई सुपात्रदान, न करै मन अभिमान, ते संसारप्रति

करै ए, शिवरमणी वरै ए ॥ २४ ॥ दानसुं तिरया
अनन्त, ते भाख गया भगवन्त, ते दान न जाणीयो
ए, न्याय न छाणीयो ए ॥ २५ ॥ साधु सुपात्रे सोय,
दाता सूक्तो होय, असणादिक शुद्ध दियो ए,
ते लाभ मोटे लियो ए ॥ २६ ॥ साधु सुपात्र सोय,
दाता सूक्तो होय, असणादिक शुद्ध नहीं ए,
वैरायां नफो नहीं ए ॥ २७ ॥ कोई मिलै मोटा
अणगार, दाता अशुद्ध विचार, अशणादिक शुद्ध
सही ए, वैरायां नफो नहीं ए ॥ २८ ॥ मिलै कुपात्र
कोय, दाता अन्न शुद्ध होय, पडिलाभ्यां तिरे
नहीं ए, सूत्र में इम कहिये ॥ २९ ॥ आणुं मन
विवेक, तीनामें शुद्ध नहीं येक, प्रतिलाभ्यां में धर्म
नहीं ए, श्रीजिन मुख से कही ए ॥ ३० ॥ दाता
अन्न पात्र विचार, तीनूं अशुद्ध निहार, तो धर्म न
भाषै जती ए, भूट जाणो मती ए ॥ ३१ ॥ इति ॥

॥ भाषाय ॥

जिन शांपनागम चाने नाखों में जगे जगे श्रीबोरप्रभुने
करा है सुपात्रों को निरदृष्ट दान देना यही शिव मार्ग है,
बाकी लोकि दान देना सुक्ति मार्ग नहीं है, लज्जादान भय
दान, बर्गर दान प्रकारके दानका अधिकार श्रीदाणांगसूत्रमें है,

जिसमें अभय दान और धर्म दान यह दोनोंही संसार समुद्र से तिरछों का उपाय है इन्हों का निर्णय भव्य जीवों को करणा चाहिए, एकेन्द्री को भय और पंचेन्द्री का पोषण करणे में कदापि धर्म नहीं होसकता खटकायों की विराधना करे वो सुपात्र नहीं है, जीव हिंसा करे झूटबोलै चोरीकरै मैथुन सेवे और परिग्रह रखे वो तो कुपात्रहीहै, सुपात्र तो वोंही है ज्यो येकेन्द्री आदि सब जीवों को न मारे झूट न बोलें चोरी न करै मैथुन न सेवे परिग्रह न रखे, ऐसे सुपात्रोंकोही अचित और निर्दोष दान देने में धर्म है, जैन शास्त्रों में ऐसाही अधिकार है ऐसे दानसेही धर्म है, सुपात्र दान देके अभिमान न करें तवही प्रति संसार होता है, श्रीविपाक सूत्र में मुवाहु कुमार आदि दस जणोंने शुद्ध साधू निग्रय निरलोभी महात्मां वों को दान देके प्रति संसार कीया है और महा पुन्योपाजन कीया है, येही क्यों सुपात्र दान से अनन्त जीव संसार समुद्र से तिरै हैं, पात्र शुद्ध साधू मुनिराज, दातारशुद्ध निर्दूषण देने वाला, और वित्त शुद्ध अशणादि च्यारुं आहार, साधू के निमित्त न कीया हुवा तथा सचित्तादिक से अलग, इन तीनों का योग मिलनेसे लाभ होता है, इन तीनों में से अगर एक भी अशुद्ध है तो कुछ फायदा नहीं होता व्यायाश्रयी को ज्ञान दृष्टी से देखना परमावश्यक है, ज्यो समदृष्टी जिन आज्ञा बाहर धर्म नहीं समझते वो कभी जिन आज्ञा बाहर के दान से कदापि धर्म नहीं समझ सकने, ।

महानुभावो क्रोधादि च्यारुं कपायों का अनुदय समय पक्षपात रहित होके खयाल करो हिंसादि पंच आश्रव द्वार सेने सेवाने और अच्छा समझ ने में जिन प्रणीत धर्म का तो लेश

मात्रभी नहीं हैं, हीना चारी और निन्दकों के कहने से शुद्ध संयम पालनेवाले संयतीयों की निन्दा मत करो, सब जीवों से वैत्री भाव रखना ही परम धर्म है क्रोधकरना लडना झगडना असत्य झाल देना और धर्मत्माओं से ईर्ष्या करना आदि कार्यों से तो महा पाप कर्म का बन्ध होता है, ज्ञानाशील संतोपादिही करना धर्म कार्य है, अपने से ब्रत न पले और पालने वालों से द्वेष रखें उसे भगवतने श्री आचारांग सूत्र में द्विगुणां मूर्ख कहा है, इसलिए नम्रता पूर्वक ऊपर कहा और कहते हैं अगर तुम्हें इस संसार समुद्र से तैरना है ज्यो भनादिकाल से जीव अष्ट कर्म दर्शना से लिप्त है उनसे अलग होके स्वसत्ता प्रगट करनी है तो ईर्ष्या और द्वेष को छोड कर एकवार स्वाधी भीखनजी कृत ग्रन्थ पढो, जिस वीर प्रभू को भगवंत सर्वग्य मान रहे हो और उनके वचनों की पूर्ण आस्था है तो उन के वचन ज्यो अद्भुत उपाद्ग सूत्र है वो शुद्ध साधुओं के पास सुनो, टीका कारों ने या चूर्णा कारों ने टका करने वालों ने ज्यो अर्थ सूत्रसे मिल ले कीये हैं उन्हें सब समझो परंतु किसी जगें सूत्र विपरीतार्थ कीया है उनही अर्थ को सबसमझकर ही आचारकी पुष्टी मत करो, जैन मज्जिम का सारान्त जिन आशा धर्म हैं, जिहां जिन आशा नहीं वहां निश्चय अधर्म है उसकर्त्तव्य से एकान्त पापकर्म का ही बन्ध है, सूत्रों में जगहें जगहें दोष धर्म कहें हैं श्रमण धर्म, और श्रमणों पासक धर्म, श्रमण धर्म तो पंचमहाव्रत मयी, श्रमणोपासक धर्म द्वादसव्रतमयी किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं कहा के श्रमण धर्म तो पंचमहाव्रत मयी है और श्रमणोपासक धर्म मत अद्वैतमयी है, जैसा श्रमणोपासक धर्म द्वादसव्रत रूप जिनेश्वर ने कहा है वैसा ही श्रमणोपासक धर्म श्री भिक्षु स्वा-

मी ने कहा है इस लिए कहना है यथासक्ति द्वादशव्रतों की आराधना निर्द्वेषगुणों करो, और श्रमण धर्म की आराधना करणों की इच्छा रखो तब श्रावक कहलावोगे केवल नाम मात्र श्रावक कहलायेंगे और हिंसा में धर्म समझने से श्रावक पद ज्यों पंचम गुणस्थान है उसकी प्राप्ति कभी नहीं होगी ।

आपका हितेच्छू और गुणवानों का दास ।

श्रावक जहोरी गुलाबचन्द लूणियां

जयपुर

॥ अथ द्वादशविध श्रावक धर्मः ॥

स्वामी श्री भीमजी कृत

द्वादश व्रतों की ढालें ॥

॥ दोहा ॥

पांच श्रणुव्रत परिवर्या, तीन गुणव्रत सार ॥

शिखा व्रत च्यारों चतुर, तेहनूं करो विचार ॥ १ ॥

पहिला में हिंसातजै, दूजै भूँट परिहार ॥ तीजै

अदत्त चौथें मिथुन, पंचमें तजै धन सार ॥ २ ॥

पहिलो गुण व्रत दिशितणूं, दूजै भोग पचखाण,

तीजै अनरथ परिहरै ॥ ये तीन गुण व्रत जाण ॥ ३ ॥

सामायक पहिलो सिखा, दूजो संवर जांण ॥ ती-
जो पोषध कहिजिए, चौथो साधुनै दांन ॥ ४ ॥
यां बारह वरतांतणों, कहियै छै विस्तार ॥ भाव धरी
भविष्य सुणों, मन में आंण विचार ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

श्रावक के बारह व्रत है, जिन में पांच अणुव्रत, तीन गुण
व्रत, चार सिखा व्रत हैं, यह ५ अणुव्रत यानें सूक्ष्म व्रत है
जिसजिस भांगे से त्याग करे वो आगार सहित है, इस लिए
अणुव्रत, तात्पर्य देशतः श्रावक के, और साधूके सर्वतः यानें आ-
गार रहित है इस से पंच महाव्रत कहे हैं, मन वचन काया के
तीनयोग और करणां कराणां और अनुमोदना ए तीन करण
है, इन के परस्पर भांगे वनां ने से ४६ भांगे होते हैं, जिस में
जैसे जैसे भांगे त्याग करे वह देशव्रत है आगार रखे वह अव्र-
त है, इस से अणुव्रत कहतां छोटे व्रत हैं, वोह पांचप्रकार के हैं
अहिंसा १, अमिथ्या २, अदत्त ग्रहण निवर्तन ३, असत्त्व ४, अप-
रिग्रह ५, यह पांच अणुव्रत कहे हैं, ।

दिशिधर्यादा १, भोग उपभोग परिहार २, अनर्घदण्ड निवृत्ती
३, ए तीनों पंच अणुव्रतों को गुणदायक है इसी से गुणव्रत कहे हैं ।

सामायक १, कालमर्यादा सहित पंचाश्रवत्याग मो संवर
है २, पोषध अहोरात्रिप्रमाण पंचाश्रवकेत्याग ३, और चौथा अ-
तिपिसंविभागव्रत ४ वो शुद्धसाधुनिग्रंथको शुद्धदांन १४ प्रकार
का देने से होता है ।

यह चार शिखाव्रत है सर्व मिलके १२ द्वादशव्रत हैं इन का विस्तार पूर्वक वर्णन बुद्धिमानजन विचारें ।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार ॥ एचाल में ॥ श्रावक
नां व्रत बार, पालै निरअतीचार, तेह दुर्गति नहीं
पडैए, भवसायरतरै ए ॥ १ ॥

भावार्थ ।

उपरोक्त यह ज्यो श्रावक के द्वादश व्रत हैं उनको अती-
चार रहित पाल नें वाला जीव दुर्गती में नहीं जाता और भव
सायर अर्थात् संसाररूप समुद्रमें तिरता है ।

॥ ढाल ॥

पहिलो व्रत इमजाणै, तिणमें हिंसा नां पच-
खांण, हिंसा त्रसतणी ए, बीजी थावर भणी ए ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं समष्टी जीवों श्रावक का प्रथम व्रत
यह है के हिंसा करने का त्याग करें । वोह हिंसा दोय प्रकार
की है एक तो व्रत हिंसा, दूसरी स्थावर हिंसा, व्रत हिंसा
चार प्रकार की हैं वेइंद्री की १, ते इंद्री २, चउ इंद्री ३, पंचेद्री ४,
जीवों को विकरण, और तीन जोग से नास करणां, और

स्थावर हिंसा पांच प्रकारकी पृथिवी १ पानी २ वायु ३
आग्नि ४ और वनस्पती ५ यह पांच प्रकार के जीवोंको नि-
करण और १ योगसे मांछनास करयां, उपरोक्त दोनू प्रकारकी
हिंसाका नितना नितना साग करे वो मध्यम आचक मत है तब
गृहस्थाश्रमा ।

॥ ढाल ॥

वसता गृहस्थावास, हिंसा हुवे तास, आरंभ
विनकरेण, पेट किम भरेण ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

मैं गृहस्थाश्रम में रहताहूँ हिंसा हो रही है आरंभ बिना
खदरपूरना किसतरह होय इसलिये ।

॥ ढाल ॥

करुं त्रसतयां पचखांण, स्थावरनो परिमांण
भेद त्रसतयां, ज्ञानी कृपा घणां ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

असजीवों को मारनेका साग और स्थावरके ममाण उप-
रान्तका मारनेका साग करुं किन्तु हे गुरु प्रस हिंसाकेभी अनेक
भेद जानियेजाने कोहैं एक अपराधीकी, दूसरी निरपराधीकी

॥ ढाल ॥

कोई मूँने वालै घात, म्हाँरी अपराधी भाँचात,
समतां दोहिलोए, नहि मूँने सोहिलोए ॥ ५ ॥

सांत्तो दे ने लेजाय, अथवा लूटे आय, खून करे
जरांए, सूस नहिं तरांए ॥ ६ ॥

॥ भावार्थ ॥

सर्वथा प्रकार असहिंसाकाभी मुक्तसे लागहोनां मुश्किलहै
क्योंके कोई जीव मुक्तको मारनेको आया व मेरा अपराध
किया वो मेरेसे नहीं खमाजाता, क्षमाभी सहम नहीं है, अथवा
मेरेपास द्रव्यहै उसको कोई चोर मकान फोड़कर लेमाना चाहै
या लूटनाचाहै वा खूनकरै तो उसे मारनेका मेरे लाग नहीं,
कारण ऐसी इदता नहीं-

॥ ढाल ॥

बिन अपराधी होय, तिणारी हिंसा दोय, मारै
जांणतांए, बले अजांणतांए ॥ ७ ॥

भावार्थ ।

निर अपराधी जीवकी हिंसा भी दोय प्रकारकी है येक
तो जांणके दूसरी अणगांणते यदि अजांणके आगार रखके
जांणते अस हिंसाका लाग करू तोभी निर्वाह होनां कठिनहै

॥ ढाल ॥

म्हारै धान जोखणरो काम, गाढी चढ जावुं
गाम, खेती हल खड्डै, शूढ निनांण करूए ॥ ८ ॥
तिहा बहु जीवहणाय, किम पालू मुनिराय, नहीं

सकै इसीए, गृहवासैं बस्योए ॥ ६ ॥ आकूटीनै
सांग, जीवमारणरो कांस, बतकै जाणतांए, नहीं
अजाणतांए ॥ १० ॥

॥ भावार्थ ॥

पेरे धांत कहतां अनाज जोखण याने वजन करनेका कामभी है उसमें ईली घुण आदि बहुत असजीवों की हिंसा है भपवा गाड़ी प्रमुख सधारीमें बैठके देशान्तर वा ग्रामान्तर जाना होताहै तबभी अमाईया बहुतसी होतीहै, और खेती के वखत इस चलाते वा सूड निनांगी अर्थात् धान्य सिवाय इतरघास प्रमुखको खोदनेमें कीडादि असजीवोंकी हिंसाके होनेका ठिकाणां है इस वास्तै अजाण हिंसाका भी साग होनां कठिनहै क्योंकि गृहवासमें बसताहूं, चलाके मारने की इच्छा सैं भी अर्थात् निरमपराधी असजीवोंके मारनेका साग करताहूं वोभी अनांण के नहीं हूं क्योंकि ।

॥ ढाल ॥

म्होरै इसडी ईर्या नाहिं, चालूं अंधारा मांहि,
वरतु जोऊं पूजूं नहींए, लेऊं मृकूं सहीए ॥ ११ ॥

॥ भावार्थ ॥

मैं ऐसा ईर्यासुपतिवान् नहींहूं के अंधेरे में चलूं जिस समय देवदेव के चले भपवा पूज पूज के वस्तुपात्रको मेलु उठाऊं तथा देने लेने वखत वस्तु जिसकी प्रतिवेचनांकहं,

॥ ढाल ॥

थाप लाठीरा नैम, मोसूं चालै केम, चउपद
हांकणांए, दो पद हटकणांए ॥ १२ ॥ इमकरतां
जीव मराय, जीव काया जुदा थाय, हणवा बुद्धि
नहिं करीए, विणबुद्धे मरीए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

थाप. कहिए चांटा और लाठी यानें लकड़ी ढंदा ममुखमें
असजीव कौन मारणोंका अतपी मुक्तसे नहीं निभसकता कारण
चतुष्पद ज्यानवरों को हांकना वा द्विपद दास दासी ममुख
पुत्र पौत्रादि कुटुम्बको शिवाका काम पड़े तो मारणों पीटणे में
हिंसा कदांच होजाय इसलिये नहीं निभसकता तो अब ।

॥ ढाल ॥

हणवा बुद्धि होय, जीव न मारूं कोय, सउपयोग
करीए, ऐसी विगत धरीए ॥ १४ ॥ हिंसानां पच-
खांण, मैं कीधा परिमाण, जावजीव करीए, करण
जोग धरीए ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

मारनेकी बुद्धी करके निरअपराधी असजीवको उपयोग
साहत मारन का साग जावजाव पयन्त करताहूं वो तानकरण
तीनजागमें ४६ भाग हातहैं जिसमें जैसे २ भागसे सागकीया
वा प्रथम अणुअत है, और जिस जिस भांगे का साग नहीं
किया वह अश्रुताश्रव है,

॥ ढाल ॥

धन्य जेले वैराग, ज्यारे सर्व हिंसां त्याग, अस
यावरतणीए, अनुकम्पावणीए ॥ १६ ॥ हूं गृहस्थ
मुनिराज, म्हारे आरम्भसुं काज, अतत बहुधणीए
असयावरतणीए ॥ १७ ॥ धनधन साधु मुनिराय
ते सुमति सुमते थाय, जीवें जिहां भणीए, नही चूकें
अणीए ॥ १८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

धन्यहै उन पुरुषों को भितकै १ करण १ जोगसे
हिंसा करणेका त्यागहै, अस और यावर जीवोंकी दयाहै, किसी
जीव प्राणकी विराधनां नहीं करतेहैं, उन महाऋषियोंका जन्म
सफलहै, हे मुनिराज मैं गृहस्थाश्रममें बसताहूं मेरे आरंभकरने
का काम पढ़तारी रहताहै इससे फिरते बैठते उठते सोते खाते
पीते इसादि कार्योंमें हिंसा होनेका ठिकाणां है और अस
यावरोंके हिंसाकी अतत बहुत है, सर्व बिरती तो साधु मुनि-
राजहीहैं वो पांचसुपति तीनगुप्ति पञ्चमहाव्रत पालेहैं जावज्जीव
पर्यंत शिव साधनसे कुशाग्रप्राज्ञ भी नहीं चूकते, उन पुरुषोंको
धन्यहै ।

॥ ढाल ॥

धृग धृग गृहस्थावास, म्हारे मोट्ये पढियो पाश
हिंसा होवें धणीए, तेह नहीं हित मो भणीए,

॥ १६ ॥ ज्ञानादि अंकुश ल्याय, मनने आणी
 ठाय, हिंसा टालस्युंए, दया पालस्युंए ॥ २० ॥
 धन धन साधूसुर, ज्यां लफस कीधादूर, इस विष
 मो प्रतैए, खातो नहिं खतैए ॥ २१ ॥

॥ इति प्रथम व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

धृक्कार है गृहस्थाश्रम को और मेरे को ज्यों में ऐसे अ-
 निस गृहस्थाश्रम में बस रहा हूँ और स्वार्थके सगे स्वकुटुम्बियों
 को बसधावर जीवों की हिंसा मयी पास में पड़िके पोप रखा
 हूँ, यह कर्त्तव्य मुझे हितकारी नहीं है किन्तु दुःखदाई ही है, परन्तु
 ज्ञानादिक अंकुश से मनोमय हाथी को अपणें टिकाओं पर
 ल्याऊंगा और जिसहि दिन मेरे सर्वथा प्रकारें हिंसाका त्याग होगा
 वोही दिन मेरे परम लाभदायक होगा,, अभी तो सिर्फ स्यावर
 और असजीवोंकी हिंसाका त्याग मर्यादा उपरान्त कीया है वह
 मेरा देशव्रत है, आगार खखा है वह व्रत नहीं अव्रताश्रव है, परं
 जाहांतक मैं जिहांतक हिंसा टालके दया पालूंगा, धन्य है उन
 साधू महात्मा शूरवीर पुरुषोंको ज्यों मोहमयी प्रवृत्ति पाशको
 तोड़कर धर्म मार्गमें चल रहे हैं, इस प्रकारका हिसाब खाता
 मुझमें नहीं खतसकता, याने सर्वथा प्रकार हिंसाका त्याग
 मुझमें नहीं होता ।

अथ द्वजोन्नत

दोहा

द्वजोन्नत श्रावकतण्डो, करै झूठपरिमाण, त्यागै
माथो जांखनै, पालै जिनवरआण ॥ १ ॥ झूठा
बोलां मानवी, नाहिं ब्यासी परितीत, मनुष जमा
रो हारनै, नरकां होय फजीत ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ बाने सत्यबोलनेका प्रमाण उपरांत त्याग करै वो
श्रावकका दूसरा प्रतीति, और आगार रखै बोले बोलावै बोलते
को भला जाणै यह अमताश्रव है उससे पापकर्मका बंध होता है
इस लिए सत्यभाषणको महा खराब और नीच कर्म समझ
कर त्याग करै जिनेश्वर की आज्ञा प्रमाण सत्यबाने बोले,
झूठ बोलनेवाले मनुष्य कदाचित् सत्यभी कहै तोभी उनका
बाव्यकी प्रतीति नहीं होती ऐसे जीव दुष्ट मनुष्य जन्म खाते
हैं और नरकोपि दुष्ट सत्य करते हैं, हे भव्यजनों इसी लिये
सदृष्ट करत हैं ।

॥ दोहा ॥

जिनमाप्पा पाप जहार एदेशी

झूठतण्डा पचखाण, नाना मोटा जाण ।

पचखै मोटकाए, काइयेक छोटकाए ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

कूठ दोष प्रकारकी है बेक तो छोटी, याने किंचित्,
दूसरी मोटी अर्थात् जिस के बोसनेमें रामदेवकौर और सोकों
में निम्दा हो ए द्विविध कूठ बोसने का साग करो ।

॥ ढाल ॥

छोटी न बोलूं केम, म्हार मृहबोससुंमेम, विण
ज सौदाकरूं, मनमें लोभ धरूं ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

गृहस्थ कहता है हे महाराज आपने कहा वो वो ठीक है
सोकिन में मृत्पाश्रममें हूं छोटे कूठ के काम नहीं निमसकते
बाण्ड्याविक में कूठ कहनाही पड़ता है कारण इसका सोभ
है सोभ के वास्ते कूठ बोसना पड़ता है ।

॥ ढाल ॥

मोटा पांच प्रकार, तेहनूं करूं परिहार, व्रतकरूं
ऐसोए, मोसुं निभे जैसोए ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

मोटी कूठ पांच प्रकारकी है उसका साग करसकता हूं जैसा
मुक्तसे निभे वैसा व्रत करणां उचित है ।

॥ ढाल ॥

किन्नाली ग्वाली जांय, तीजी भूमि पिछांय
यापय मोसो करीए, कुरी सालभरीए ।

॥ भावार्थ ॥

मोटी भूट पांच प्रकारकी है किन्नाली अर्थात् कन्या के वास्ते १ ग्वाली याने गऊ भैंस प्रमुख दूधवाले जपानवरो के कारण २ तीसरी भूमि कहिए जमीन मकानात वगैरहके वास्ते ३ घापशमोसा याने किसी की अमानत चीज हजम करणां ४ बूडीसाची वो है के मिथ्यागवाही देनां ५ ।

॥ ढाल ॥

कन्यारा भेद अपार, करणों सूँस विचार, बरसा छोटकीए, तेहने कहिये मोटकीए ॥ ५ ॥ गहली गूंगी होय, बले आंख नहिं दोय, काणी भीमणी ए, आंख्यां चीपणीए ॥ ६ ॥ काली कोडाली नारि, कानां न सुणौं लिगार, टूटी पांगलीए, बोलै तोतलीए ॥ ७ ॥ रोग घरू बटमांय, जीवारी आसा नहिं काय, बोलां ज्वरो तेजरोए, आवै एकान्तरोए ॥ ८ ॥ बलेरोगछै खैन, जीवनपांमें चैन, एकपित्तलीए, दुर्गन्ध अति यणीए ॥ ९ ॥ हूँदी हूँदी होय, बादी बांकी जोय, छोटी बांफणी ए, आंख्यां भांमणीए ॥ १० ॥ हींखबन्गरी होय, तिणरी जात न जाणौं कोय, आतो जावै जैठए, खान न खै बडैए ॥ ११ ॥ ज्वरीग नै खोड, बले

बरसदे तोड, अछतो नहीं भाखणोंए, हूवै जिमदा
खणोंए ॥ १२ ॥ यां वोलांरो सांम, आयपडै कोई
कांम, घरमंडै जठैए, भूठ न बोलू तठैए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच प्रकार के भूठ ऊपर कहेहैं उनमें पहला (कन्यालीक)
सो कन्या के वास्ते मिट्या बोलना वोह अनेक प्रकार के हैं
इस लिये ज्यो सोगनकरै वोह विचारके करनेसे नियमका भंग
नहीं होता, अनेक भेदोंमें से संक्षेप कहते हैं, जैसे छोटी उम्र
वालीकों ज्यादा उमरकी कहनां, अथवा कोई गहलीहो, गूगी,
आंधी, कांणी, मांजरी, आंखें चींपणीहो, काली हो, कोडाली
स्त्री, बहरी, टूटी, पांगली, तोतली बोलने वाली, महारोगणी जी-
विताशा विमुक्त, बेलान्तरों, तेजरो, वा एकान्तर ज्वरागमनवालीहो
और महारोग जिसका नाम खैन अर्थात् क्षयी सर्व धातु बलक्षय
जिस से जीव क्षण भरभी आराम नहीं पासके, फिर रक्तपित्त
रोग, कुष्ठादिक जिसमें असन्त दुर्गन्धहो, कुबरी ढिंगनी, तिरछी
भांकने वाली, बांकी देखने वाली, जिसके बांफणी गल छोटी
हो गईहो, जिससे नेत्र डरावणें मालुमहों, अथवा नाचबन्नाकी
होय जिसकी जात कोई नहीं जानताहो वो जहांजावे वहां
उसकी साख कोईभी नहीं भर सके, ऐसी अनेक तरहकी कन्या-
वों के अर्थ मिट्या याने बुरीकों भली, वा भलीकों बुरी कह-
णां, तथा, रूप रोग और खोट क्या हीनेंद्री, और बूढीकों छोटी
कहनां इत्यादिक असत्यका त्यागकरनां, जैसा हो वैसा कहणां,
इत्यादिक बोलणे में हेस्वामी किसी समय वा कोई कार्य बससे

मिथ्या बोलनेकाही प्रसंग आपदै जैसे विवाहादिक संबन्ध में झूठ बोलना पड़ता है, तो वहां कवापि त्याग करने वालोंको झूठ नहीं बोलना, परन्तु

॥ ढाल ॥

हांसी मसकरी काज, म्हारे सूँस नहीं मुनिराज
पालतां दोहिलोए, नहीं मृनें सोहिलोए ॥ १४ ॥
इत्यादिक परिमाण, में कीथा पचखांण, इमहींज
पुरुष तर्णीए, कन्या ज्यों भापणीए ॥ १५ ॥

भावार्थ ।

हास्य और मसकरी प्रसिद्ध है इनमें मेरे झूठ बोलनेके सोगन नहीं है इसका प्रमाणोपरान्त ज्यों सोगन कीएहें, वैसे ही पुरुषके वास्ते भी विचार लेणी कन्याकी तरहैसै,

॥ ढाल ॥

इमही खाली जांण, दूधतणों परिमाण, वैंत
न उचारणोए हुवे ज्यूंदाखणोए ॥ १६ ॥

॥ भावार्थ ॥

एसी तरह से गाय भैंस आदिके विषयमें भी अनेकप्रकार का झूठ भाषण होता है जैसे व्यावतका कमी देसी तथा दूध का देसी कमी बहनां यह गदालीकहै, श्रावकको इसकी मर्यादा के उपरान्त लागू करणां, और, जैसा, हो, वैसा, बहनां,

॥ ढाल ॥

भूमाली घरनें हाट, बेलै बाढ़ नैं घाट, धरती
बावण तर्णीए, इत्यादिक घणीए ॥ १७ ॥

॥ भावार्थ ॥

भूम्यालीक अर्थात् पृथिवी के वास्तै झूट, मकान दुकान
बगैरहके निमित्त ज्यो असत्य भाषण और खेतो बगैरहमें अनेक
तरह सें मिथ्या कहनां ए भूमालीकहै इसका प्रमाण उपरान्त
त्याग करै वो श्रावक धर्म है,

॥ ढाल ॥

कोई धन सौंपै आय, हूंराखूं घरमांय, आयनें
मांगै जरांए, नद्वे नहीं तरांए ॥ १८ ॥ मांगैधणीं
ज्यो आय, बाप भाई नै माय, बोरो आय अडैए,
राजा रोकै जरांए ॥ १९ ॥ जब झूठ बोलणरो
नेम, राखूं ब्रतसूं प्रेम, चोखो पालस्यूंए, दूषण
टालस्यूं ए ॥ २० ॥ मांगै अनेरो आय, तो नटजाऊं
मुनिराय, सुंसनहीं कियोए, लोभैं चित्तदियोए
॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

चोखी झूठ बापण मोसाका त्याग यानें अमानतमे खयानत
जैसैं किसीनै धन ल्याके विश्वास कर सौंप दिया घरमें मेलाल-
या जब उममेलने वाले को जरूरत हुई मांगनें लेनेको आया

उस वस्तु नहीं नटणां, वो खुद मालिक मांगे वा भयवा भाई मांगने आवे, चाह मा उसकी हो, वा व्होरे उसके आ बैठें तब नटण पर राज दरबारहो, राज रोक देवे, तब झूठ बोलण का निन्दमहै, तो अपण व्रतको न छोडै, सच्चा हाल ज्यो होसो नहै, शुद्ध व्रतपालन करै, सर्व दूषणको टालकर मिथ्या न बोलै वो धर्म है,

॥ ढाल ॥

साख भरावै मोय, झूठ न बोलूं कोय, ते पिण मोटकी ए, नहीं छोटकी ए ॥ २२ ॥ ज्योहू बोलूं वाय, घर पैलांरो जाय, भाषा टालणींए, पाछे बोलणी ए ॥ २३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

पांचवीं मिथ्या कूडी सात्ती, चानें झूठी गवाही देनां, इस झूठ का भी मेरे त्यागहै, सात्तीभी छोटी और बड़ी दो तरह की है, पटी तो वो है जिसके बोलनेसे राजा दंड और लोक भंड, ऐसी झूठके बोलने वालेको राजमें दंडहो और दुनियामें बदनामहो, जिसके हाथ पैर नासिका छेदकर सजा पानेके बाद देशमें नि-
वालेहैं, छोटा बोके ज्यो दूसरेका नुकसान तो उस झूठ में है पर वो बदनामी और वह बड़ी सजा जिसमें नहो भयवा हास्य सुखरत्नमें दोलें, इसलिए मोटी झूठ चाने झूठी गवाही देना इसके त्याग, भयवा सात्ती देज जिसके देने से दूसरेके घरका नाम रोता हो तो इस से वैसी भाषा टालकर बोलना चाहिए झूठी गवाही नहीं देनी चाहिए।

॥ ढाल ॥

करै झूठसभेद, त्यागो आण उमेद, मनोरथ
जद फलै ए, झूठ छोटी टलै ए ॥ २४ ॥ करण
जोग घाली एम, करै झूठसनेम, ब्रतकरै इसोए पोते
निमै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये श्रावक को जितनी प्रकारसे झूठबोली जाती हैं
उन्हें समझकर चितकी उमंगसे और उमदेसे त्यागकरणां, और
छोटी झूठ कोतूहलादि कारण बोली जाती है उसका त्याग
करणां, यह विचार मनमें हमेशा रखना रहै, जिस समय सर्वथा
झूठ बोलने का त्याग होगा वोही दिन धन्य होगा, तात्पर्य ए
है के दूसरा श्रावक ब्रत करण योग युक्त असत्य बोलनेका
त्याग करै अपनेसे निभसके सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्याके
निमित्त झूठ । ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित्त झूठ ।
भूमिक ३ अर्थात् जगां जमीन के निमित्त झूठ । घापण मोसा
४ अर्थात् अमानत में खयानत । कूडी साख ५ अर्थात् झूठी
साक्षी । यह पांच प्रकारकी झूठ का त्याग करे वो श्रावकका
तीसरा ब्रत है धर्म है, त्याग नहीं वो अब्रत है आश्रय है जिससे
पाप लगता है,

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतणू, करै अदत्तरात्याग,
मनमें समता आशिने, चोढ़ै भाव वैराग ॥ १ ॥
इहलोकैं जस अतिवर्ण, परलोकैं सुखपाय, भाव
सहित आराधिया, जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥
चोरी करै तेमानवी, गयाजमारो हार, मनुष्यतणू
भव खोयनें, नरकां खावै मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावकका अदत्तका त्याग, याने विना दिये
कुछभी न लेना, ऐसे तीसरे व्रतको मनमें समभावल्याके वैराग्य
में भाव चढ़ावै जिसमें इस लोकमें जस कीर्ति और परलोकमें
असन्त सुखी होय, और भाव सहित आराधनां करणसे पुनः
पुनर्जन्म मरण जीव घनादिकालसे कर रहाई सो मिट्ये सक्ताई
और चोरी करणसे मनुष्य इस भवमें दुखी होके नरकमें जाता
है, वहां महापीट और मार सहनी पड़ती है, इस लिये श्रावक
को चोरी करनेका त्यागकरना अदृश्य चाहिये, पपाशक्ति त्याग
करना हो श्रावकका तीसरा (३) व्रत है,

॥ दाल ॥ चालतेहीज ॥

तीजो व्रतचै एम, करै अदत्तसे नेम, नकरै
मोटकीए, दले बांटकीए ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

करै झूठराभेद, त्यागो आण उमेद, मनोरथ
जद फलै ए, झूठ छोटी टलै ए ॥ २४ ॥ करण
जोग घाली एम, करै झूठरानेम, ब्रतकरै इसोए पोतै
निमै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये आचक को जितनी प्रकारसे झूठबोली जाती है
उन्हें समझकर चितकी उमंगसे और उमदेसे त्यागकरणां, और
छोटी झूठ कोतूहलादि कारण बोली जाती है उसका त्याग
करणां, यह विचार मनमें हमेशा रखता रहै, जिस समय सर्वथा
झूठ बोलने का त्याग होगा वोही दिन धन्य होगा, तात्पर्य ए
है के दूसरा आचक ब्रत करण योग युक्त असत्य बोलनेका
त्याग करै अपनेसे निभसके सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्याके
निमित्त झूठ । ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित्त झूठ ।
भूमिक ३ अर्थात् जगां जमीन के निमित्त झूठ । घाषण मोसा
४ अर्थात् अमानत में खयानत । कूडी साख ५ अर्थात् झूठी
साक्षी । यह पांच प्रकारकी झूठ का त्याग करे वो आचकका
तीसरा ब्रत है धर्म है, त्याग नहीं वो अब्रत है आश्रय है जिससे
पाप लगता है,

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतण्डू, करै अदत्तरात्याग,
मनमें समता आशिने, चोढ़ै भाव वैराग ॥ १ ॥
इहलोकैं जस अतिवण्डू, परलोकैं सुखपाय, भाव
साहित आराधियां, जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥
चोरी करै तैमानवी, गयाजमारो हार, मनुष्यतण्डू
भव खोयनें, नरकां खावै मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावकका अदत्तका त्याग, याने विना दिये
कुछभी न लेना, ऐसे तीसरे व्रतको मनमें समभावल्याके वैराग्य
में भाव चढ़ावै जिसमें इस लोकमें जस कीर्ति और परलोकमें
अत्यन्त सुखी होय, और भाव साहित आराधनां करणसे पुनः
पुनर्जन्म मरण जीव भनादिकालसे फररहाई सो मिट्ये सक्ताहै
और चोरी करणसे मनुष्य इस भवमें दुखी होके नरकमें जाता
है, वहां महापीड और मार सहनी पडती है, इस लिये श्रावक
को चोरी करनेका त्यागकरना अवश्य चाहिये, यथाशक्ति त्याग
करना दो श्रावकका तीसरा (३) व्रतैह,

॥ ढाल ॥ चालतेहीज ॥

तीजो व्रतछै एम, करै अदत्तरो नेम, नकरै
मोटकीए, बले छोटकीए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं अदत्तका सागकरै वो तीसरा व्रतहै,
चोरी (२) दोय प्रकारकी है एक बड़ी, एक छोटी,

॥ ढाल ॥

न्हानी किमत्यागूं सांम, म्हारै घास ईधणरो
कांम, खिण खिण किणनै कहूंए, किहां किहा
आज्ञालेऊंए ॥२॥ न्हानी त्यागैते धन्य, पिण महा
रो नहि मन्न, चित चोखो नहींए, कर्म घणां सही
ए ॥ ३ ॥ सांधोदे गांठडीछोड, धाडोकरि तालो
तोड, वस्तु मोटी अछैए, धणीजांश्यांपछैए, ॥४॥
इसा अदत्तरात्याग, में पचख्या आंण बैराग, ते
पिण, परतणी, नहिं घर भलीए ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोल्या हेमुनिराज छोटी चोरी ज्यो हांस्यकु-
तूहलमें या अनेक छोटी वस्तु मालिक के बिनां पूछै लेनां
इसके साग करने की मेरी सामर्थ्य नहीं, क्यों क मेरे घास
ईधण कहिये काष्ठादिक जलानेकी चीजें, हरेक जगहसे किंचित
मालिक से बिनां पूछै लेनेका काम पडता है तो बारंबार किस
किस से पूछता फिरूं, इस लिये इसके साग मुझसे नहीं निभ
सकते, इसमें छोटी चोरीका साग करै वो धन्यहै, लेकिन मेरा

मन बहूल कर्मी होनेसे नहीं होसक्ता और ज्यो बड़ी चोरी याने
धाड़ा देना, सांथा झेंडा भीत फोड़ माल काढलेना, या पड़ी
हुई गठड़ी वगैरहः को उठालेनां घणी होते, तथा ताला तोड़नां
इत्यादि चोरी करनेका त्याग मैंने वैराग्य ल्याके कियाहै लेकिन
पराये घरकी चोरी के त्यागहैं अपणें घरकी नहीं ।

॥ ढाल ॥

म्हांस कुटुंबादिकमें माल, मौमें पड़ै हवाल,
भीड़ घणीसहीए, घरमें धन नहींए ॥६॥ जब तालो
ल्यूं तोड़, बले गांठड़ी छोड़, सांतोदे चोरस्यूंए, खो-
स ल्यूं जोरस्यूंए ॥७॥ इतरा मूंनै आगार, ते नरक
तणांदातार, रमणी बसपड़्योए, जंजीर जुड़्योए
॥ ८ ॥ राजा लेवै डंड, होय लोकमें भंड, चोरी
नहीं करूंए, इसो व्रत धरूंए ॥ ९ ॥ इसो व्रत मुनि
राय, मोनें द्यो पचखाय, जीऊं जिहां भणीए व्रत,
चोरी तणीए ॥ १० ॥

॥ अर्थ ॥

गृहस्थ कहताहै मैंने जो चोरी करने का त्याग मर्यादा
उपरान्त किया उसमें भी मेरे यह आगारहै के मेरे द्रव्य की
संसीहोनेसे और द्रव्य के अभावसे दुखी होने पर मेरे कुटुंबियों
या माल भीतपाड़ तालातोड़ या जबरदस्तीसे लेऊं तो मेरेत्याग
नहीं, ए मेरे ल्यो आगारहैं नरकादि दुःखोंके देने वालेहैं, लोक-

न स्त्रीवत् होनेसे कैदीकी तरें माहे जंजीरसें जकड़ाहुवाहं,
चोरीकं करनेसें राजतो डंडलेवै और दुनियांमें वदनांमीहो इस
लिये चोरी नहीं करने का व्रत अंगीकार करादो, हे मुनिराज
यावत जीवन पर्यन्त जो व्रत लिया है उसको खंडित नहीं
करूंगा ।

॥ ढाल ॥

चोरीकरम चमंडाल, तिण्णी पडै हवाल, दुख
नरकां तणांए, सहै अतिघणांए ॥ ११ ॥ चोरी ले पर
माल, तिण्णमें पडै हवाल, नरक निगोद तणांए,
दुःख होवे घणांए ॥ १२ ॥ परधन लेवै ताह, देवै
पैलारे दाह, ते नरकनां पाहुणांए, जात लजावणांए,
॥ १३ ॥ इहलोके उदयहुवै पाप, तो दुख भुगतै
आपो आप, मार घणी पडैए, विण आई मरे ए
॥ १४ ॥ तिण्णरा काटै हाथनै पांव, वलिशूलीदेवै
चढाय, नकटो बूचो करैए, वले मार घणी पडैए
॥ १५ ॥ मूंआ पछै चोरी काय, नाखै खाईरे मांय,
तिहां कुत्ता आयनैए, विगाडै कायनैए ॥ १६ ॥
वले कागा चांच सू मार, तिण्णरा डैयां काढैवार,
शरीर तिण्ण तणांए, वीपरीत दीखै घणांए ॥ १७ ॥
तिण्णरादेखै मातनै तात, मनमें घणां सिधात, इण
चोरीकरी परतणीए, लजाया हम भणीए ॥ १८ ॥

लोक करै चोरी वात, ते सुणी मातनै तात, बोलै
रोवताए, नीचो जोवताए ॥ १६ ॥ चोरीसूं दुःख
अनन्त, तिणरो कहतां नावै अन्त, चिहुं गति भट
का वणाए ते पाप चोरी तराए ॥ २० ॥ इमसांभ-
ल नरनारि, चोरी न करो लिगार, समता रस आगिनि
ए, त्यागो जांणिनेए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सत गुरु कहते हैं हे भव्य जीवो चोरी महा चाण्डाल कर्म
है, ऐसे कामसे अनेक तरह के दुःख होते हैं, तथा नरकोंमें अन-
न्त दुःख सहने पड़ते हैं, पराया माल चुरानेसे उस मालके मालि-
क के हृदय को महा दाह लगजाता है, इसी से निगोदादिक
के पाने वाले होते हैं, मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके जन्म लज्जित
करते हैं, असन्त पाप के फलसे इसी भवमें दुख अपणे कर्मका
भोगते हैं, फिर हाथ पग काटे जाते हैं, राज शूली चढा देता
है, सिर छेदभी करदेते हैं, नाक कान काटलिऐ जाते हैं अनेक
प्रकारकी बिटबना करीजाती है, मरजाने पर चोरके शरीर को
खाईमें ढास देते हैं, तो वहां कुत्ते कबूतरे आदि अनेक दुर्दसा
करै हैं, उसकी ऐसी व्यवस्था माता पिता देखकर महालज्जित
होकर भागते हैं, सोभी सामने नहीं भांक सकते, नीची नज़रही
रखते हैं, करते हैं इसने हमारे कुलको कलंक लगाके लज्जित
करादिया है, सतगुरु कहते हैं असन्त दुःखदाई चोरी कर्म है
इस के पापसे चतुर्गती संसारमें भ्रमण करना पड़ता है, ऐसा
सुनके चोरी नहीं करणेका व्रत समता त्यागके धारण करो ।

॥ ढाल ॥

केई आंगी मन बैराग, सर्वथकी दे त्याग, करण
जोगां करीए, मन समता धरीए ॥ २२ ॥ कोई सोंसक-
री दे भांग, तिणरा घणां निकलसी सांग, महा
पापी मोटकोए, करम दीयो धकोए ॥ २३ ॥ चोखा
पालेजे सोंस, त्यारी पूरी जे मनरी होंस, जासी देव-
लोकमें ए कोई जासी मोक्ष में ए ॥ २४ ॥ इति

॥ भावार्थ ॥

कई जीव ऐसे विरक्ती बैराग्य मग्न होके तीन करण तीन योग-
सें मनमें समता भावसें सर्वथा प्रकार चोरी करणका त्याग कर-
ते हैं वो धन्य हैं, कई भारी कर्मी जीव त्याग करके व्रतभंग कर-
देते हैं वो महा पापी होके कर्म मय तोफान के धक्के से संसार
समुद्रमें डूबते हैं, इस लिये हे भव्यजनो अपने लिए व्रत पञ्च-
रुखाण के आराधणसें मनके मनोरथ सिद्ध होते हैं, वो सुव्रती
जीव देवलोक में या मोक्षमें जाते हैं ।

॥ इति तृतीय व्रतम् ॥

॥ अथ चतुर्थ व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

मनुष्य तणों भव पायनें, जे नर पालै शील ।
शिव रमणी बेगावैरै, करै मुक्तिमें लील ॥ १ ॥

साधूत्यागै सर्वथा, गृहचारी परनार ।

मांठी निजर जोवे नहीं, तिणरा खेवापार ॥ २ ॥

कैयक श्रावक एहवा, आणै मन वैराग ।

भोगजाणै विपसारिषा, घरनारी दे त्याग ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मनुष्य भव पाके शीतपालै यानै मैथुनका त्यागकरै यह श्रावकका चोथा (४) मतहै, उसके पालनै से वो जीव मोक्ष स्त्रीको जलदी बरके सिद्धलेशमें ज्ञान दर्शनादि गुणों मयी परमानन्द भोगते हैं, साधूके तो सर्व प्रकार मैथुनके त्याग होते हैं, और श्रावक के परदाराके त्याग होना आवश्यक है, जो जीव परस्त्री को छोटी नजरसे नहीं देखै तो उसके खेवापार याने परम सुख परमानन्द पदपावै । कैयक श्रावक ऐसे वैराग्यभावपूर्ण होते हैं वो भोगोंको जहर (विषको) बराबर समझकर अपनी परकी हजारों स्त्रियोंसे मैथुन सेनेके त्यागी हैं, वो जीव महा वैरागी हैं बान्छित फल पाते हैं ।

॥ ढाल देशीतेहीज ॥

चौथोमत इमजाण, अवमन तणांपचखांण, दे-
वांगनां मनुष्यणीए, त्यागै तिर्य्यचणीए ॥ १ ॥
बले पोतारीनार, तेहनूकरै विचार तजै दिन रात-
रीए, परणी हाथरीए ॥ २ ॥ पखितयादिकनां
नेम, नर तो पालैएम, मोहणी परिहरैए, आत्मा

बस करैए ॥३॥ कोई सरव थकी दे त्याग, आंणी
मन वैराग, विषयें ऊधरैए, मन समता धरैए ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं भव्यजनों अवलोकन का त्यागकरे वो आवक का चोपास्यत है इंद्रियों के भोगोंको जहर विषके समान जाणकर पर स्त्रीका त्यागकरै जिस में देवांगनाका मनुष्यणीका तिर्यचस्त्री प्रमुखका त्याग, और घरकी स्त्रीका भी विचार करै दिनरातका नियम माफिक त्याग करै, जिसमें परस्त्री प्रमुखका तो आवक कै त्याग होनां अवश्य चाहिए, आत्माको वशकरके मैथुन सेना त्यागै सोही धर्म है, कई जीव वैराग्य के भावसे विषयों में लिप्तन होके घरस्त्री और परस्त्रीका त्याग मन में समता धरके करते हैं उन्हें धन्य है ।

॥ ढाल ॥

म्हारै घरनारी सुं नेह, तिण नैं किम देऊं छेह,
आत्म बस नहीं ए, कर्म घणां सही ए ॥५॥ करूं
दिवसतणां पचखाण, राततणां परमाण, संतोष
आदरूं ए, विषय परिहरूं ए ॥ ६ ॥ परनारी सुं
प्रेम, मैं कीधो छै नेम, सूई डोरा करीए, ऐसी वि-
गत धरीए ॥ ७ ॥ जे सेवै परनार, ते गया ज-
मारो हार, नरकां मांही पड़ैए, ढील नहीं करैए ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोला हे मुनिराज आपने फरमाया वो सख है भैं, भी ऐसा ही जाणता हूं परंतु घरकी स्त्रीके स्नेह राग सें फसा हुआ हूं इससे त्याग नहीं हो सक्ता आत्मा बस नहीं हो सक्ती, इस लिए दिनका तो त्याग करता हूं, और रातका प्रमाद्योपेत मैथुनका त्याग है, और परस्त्री सें छूई डोरावतु सेनेका त्याग है, परस्त्री सेवन करणे वाले मनुष्य जनम हारकर नरकों में भलदी ही जाते हैं ।

॥ ढाल ॥

चौथो व्रत घणो श्रीकार, सारां व्रतांरो शिरदार, व्रतांरो नायको ए, मुक्तिरो दायको ए ॥६॥ शील व्रत कै मोटो रत्न, तिणारा करिए यत्न, ते आत्म ऊधरै ए, शिव रमणी वरै ए ॥१०॥ ए व्रत पालौ निदोष, त्यांनै नैडी कै मोष, तिण में शंका नहीं ए, श्रीजिन मुख सूं कही ए ॥११॥ च्यार जातरा देव, करै ब्रह्मचारी री सेव, बले शीस नमावता ए, बान्दै गुण गावता ए ॥१२॥ जिण चौथो व्रत दियो भांग, त्यारां घणां निकलसी सांग, ते नरवां मांही पड़ै ए, घणां रह बड़ै ए ॥१३॥ इह लोके फिट फिट होय, परलोकें दुर्गति जोय, तिण जन्म विगाड़ियो ए, मानव भव हारियो ए ॥१४॥

॥ भावार्थ ॥

चोथा व्रत अत्यंत श्रेष्ठ और सर्व व्रतों में मुख्य है और मोक्ष का दायक है, इस शीलव्रतव्रत को जलकर अलंड रखने से आत्मोद्धार करके मुक्ति रमणी करते हैं, इस व्रतको गृद्ध-पालने वाले के मोक्ष नज्दीक है श्री जिनेंद्रों ने अपने मुखसे फरमाया है ।

॥ उक्तं च ॥

देव दाणव गंधर्वा, जरक ररुकस किन्नरा, ।
वंभयारिं नमं संति, दुक्कडं जे करंतितं ॥१॥

॥ अर्थ ॥

देवता दानव गंधर्व यक्ष राक्षस किन्नर आदि ब्रह्म व्रत पालने वाले को नमस्कार करते हैं कारण ये महा कठिन काम है इससे वे पुरुष पुरुषोत्तम हैं ।

॥ भावार्थ ढालका ॥

भुवनपती बानव्यन्तर जोतपी वैमानिक ये स्यारों प्रकार के देवता ब्रह्मचारी की सेवा भक्ति करते हैं मस्तक नम्रा के गुण ग्राम करते हैं, और जो चोथे व्रतका भंग करते हैं उनको पुनर्जन्म मरणादिक सांग बहुत करने पड़ते हैं, नरकों के दुःख सहने पड़ते हैं, इसलोक में दुनियां उनकी गद्दी करती है, और परलोक में महादुखी होना पड़ता है ।

॥ ढाल ॥

जातिवंत कुलवंत ते आतम नित्यदमन्त, ते
व्रत पालसीए, कुल उजवालसीए ॥ १५ ॥ नाहि

जातिवन्त कुलवन्त, बलिरसगृद्धिअत्यन्त, ते वि-
 पयरो पासियोए, वरत विद्यासियोए ॥ १६ ॥
 निरलज लज्जा सहित, बलि विषयविकार सहित,
 तिग व्रत कापियोए, ते मोटो पापियोए ॥ १७ ॥
 ब्रह्मव्रतरा भांजणहार, धृगत्यांरो, जमवार, ते न्यांत
 लजावणाए, दुसगति ना पावणाए ॥ १८ ॥
 घणा लोकारे मांय, ऊंचै स्वर बोल्थो नहि जाय,
 या खासी मोटी घणीए, व्रत भांजण तणीए
 ॥१९॥ यो मोटो कियो अकाज, लजावन्तनै आवै
 लाज, निरलज लाजै नहीं ए, सत्य घणी सहीए
 ॥२०॥ इण शील भांजणरो सोय, कहवत मिटै न
 कोय, पा मोटी महणीए, जीवै जिहां भणीए
 ॥२१॥ इण पापी कियो अकाज, अजे न आवै
 लाज, तोही बोले गाजतोए, निरलज नहिं लाजतो
 ए ॥२२॥ ब्रह्मव्रत तणों करै भंग, तिणरो कदेन
 कीजै संग, कुकर्म मांहि मिलियोए, करम कादै
 पालियोए ॥२३॥

॥ भावार्थ ॥

जो जातिवन्त कुलवन्त होते हैं वोही अपनी भात्मा को
 समझकर ब्रह्मव्रत पालने हैं, और लज्जाको उज्जल याने उजला

करते हैं, और ज्यो जातिवन्त कुलवन्त नहीं है वो रसगुद याने आसक्त बसीभूत होके विषय रूप पासमें पड़के ब्रह्मव्रत का विनास करते हैं, वो निर्लज्ज विकारसवी व्रतको काटके महा पापी होता है ब्रह्मव्रत भंग करनेवाले को धृक्कार है, ऐसे जातिलजावणेवाले जीव दुर्गति के पाहुणे हैं, उनसे बहुत लोको में ऊंचे स्वर से नहीं बोलाजाता है क्योंकि यह बड़ी भारी खोट है, कोई लज्जावान होय उनको सरमाना पड़ता है, किन्तु निर्लज्ज तो निन्दा से भी नहीं लाजते हैं, लेकिन इस सीलव्रत भांजणे का सत्य तो उनके जीमें खटकताही है, चाहै जितना बड़ा आदमी क्यों न हो मगर लोगोंमें कहणांवत तो बणीही रहती है, ए टोणा पावत जीवन पर्यन्त रहता है, पांच आदिषियों में अगर बोलै तो कहते हैं के देखो इस पापी नै भारी अकाज किया लेकिन अब भी ऊंचाहोके बोलता है, इस-लिए ब्रह्म व्रतको भंग नहीं करना तथा करने वालेका संगभी नहीं करना चाहिए, संग करने से उसके कर्त्तव्य सामिस होके कर्ममईकादेमे गलित होते हैं ।

॥ ढाल ॥

जे सेवै परनार, ते गया जमारो हार, लजावै न्यातनै ए, पड्या मिथ्यातमें ए ॥२४॥ परनारी मा वहन समान, त्यांसुं न करै मांठो ध्यान, चित चो-खो कियो ए, ब्रह्मव्रत लियो ए ॥२५॥ कोई छोड सरमनै लाज, त्यांसुंई करै अकाज, ते निर्लज नहिं लाजियो ए, डाकी वाजियो ए ॥२६॥ करम

जोग जाय भांज, पिण केतानें आवै लाज, केई
लाजै नहीं ए, वेसरमी सही ए ॥२७॥ कोई सि-
धावै मन मांहि, में मोटो कियो अन्याय, पछता-
वो अति घणों ए, खोटा कर्तव्य तणं ए ॥२८॥
जिणरो चोथो व्रत गयो भांग, तिणरो पूरो अभा-
ग, ते नागो निरलजोए, तिण में नहीं मजो
ए ॥२९॥ ब्रह्मव्रतनी नव बाढ, जे पालै निर अ-
तिचार, अडिग सैंढो घणंए, मन जोगां तणं
ए ॥३०॥ जिण लोप दीधी नव बाढ, तिणरा डुवै
विगाढ़, खुराबी होवै घणी ए, ब्रह्म भंग तणी
ए ॥३१॥ व्रत भांग सेवै परनार, ते गया जगारो
हार, फिट फिट होवै घणं ए, कुजस तिण तणं
ए ॥ ३२॥

॥ भारार्य ॥

ज्यो आदमी पराई स्त्री को सेते हैं वो मनुष्यव्यवहार कर
अपनी जातिको सजाते हैं, मित्थ्या मयी कूप में पड़ते हैं, और
ज्यो परस्त्री को माता भैया के समान सम्मान कर छोटी नज़र
नहीं लाकते बनते अपणों चित्तको स्वच्छकर ब्रह्मव्रत अंगीकार
किया है, कोई ऐसे निर्लज्ज होते हैं सो मा, भैया से भी नहीं
चूकते, वो बाजे टाकी दुनियां में करलाते हैं, और कह एक
ऐसे भी हैं, पूर्व संचित पाप से कभी ऐसा होभी जाय तो जन

समुदाय में लाजित होते हैं मन में पछतावा करते हैं मैंने अनर्थ किया अन्याय किया है इस वास्ते जिसके चोथे व्रतका भंग होगया उसका तो पूरा अभोग्य है, वो कपड़े सहित भी नंगा निर्लज्ज है, इसमें कुछ मजा नहीं है इस वास्ते ब्रह्मव्रत को नव वाड सहित पालन करे और दृढ़ होकर अडिग रहें मनको चंचल न करे उनहीं की बलिहारी है जिसने नव वाड को लोपदी है उसका विगाड़ बहोत है ब्रह्मव्रत के भंग करने से, ज्यो इस व्रत का भंग कर के पराई स्त्री सेवन करते हैं वो मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके संसार में निन्दित बहुत होते हैं उनका अपयश बहुत दुनियां में हाता है ।

॥ ढालतेहिज ॥

चोखे चित्त पाले भील, ते रहे मुक्ति मैं लील, राखो नित्य आसता ए, पामें सुख साखता ए ॥ ३३ ॥
दिन दिन चढते रंग, पालो व्रत अभंग, मन समता धरो ए, शिव रमणी बरो ए ॥ ३४ ॥ ब्रह्मव्रतनें श्री-जगदीस, ओपमा कहि बत्तीस, दसमां अंग में कही ए, सूर पालै सही ए ॥ ३५ ॥ करण जोग सुजा-ण, व्योरा शुद्ध पिछाण, चोखे चित्त पालज्यो ए, दूषण टालज्यो ए ॥ ३६ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सत्गुरु कहते हैं इस सीलव्रतको चोखे चित्त पालने से मोक्ष में साखते आत्मिक सुखों में लील विलास सदा सर्वदा ।

पाते हैं, इसलिए इसकी आस्था प्रतिष्ठा रखके दिन २ चढ़ते प्रणामों से मनमें समता ल्याके ए अश्वमेधव्रत को पालन करो इस व्रत को श्री जगदीश्वर प्रभुने श्री दसमां अंग में वत्तीस ओपमा दी है, इस ब्रह्मव्रत को जो सूरवीर पुरुष होते हैं सो पालते हैं और बांही शिख मयी स्त्रिको वरते हैं इस लिए कहा है महानुभावो करण जोग व्योरा शुद्ध विचारके लिया हुआ व्रत को अच्छी तरहें निर्दोष पालन करो कोई प्रकार से किसी भी हालत में दोष मत लगावो ।

अथ पञ्चम्व्रत

॥ दोहा ॥

पांच में व्रत त्यागै परिग्रह, ते परिग्रौ मूरछा जाण ।
तिणखूं निरन्तर जीवै, पाप लागै छै आण ॥ १ ॥
ए मोटो पापछै परिग्रहो, तिणथी रोता खाय ।
सांसो हुवे तो देखल्यो, तीन मनो रघ मांय ॥ २ ॥
ए अनर्थ ज्ञानी भापियो, नरक लेजाये ताण ।
यती मार्गनूं भंजणो, निपेदकियो इम जाण ॥ ३ ॥
खेतुत वधु हिरण सुर्वण तणों, धन धान बलि जाण ।
द्विपद नें चोपद तणों, कुम्भी धातु तणों प्रमाण ॥ ४ ॥
खेत ऊघाडी भूमिका, वधु हाट हवेली जाण ।
रुपा नें सोना तणों करै

सक्ति सारु पञ्चखाण ॥ ५ ॥ सचित अचित
मिश्र द्रव्य है, यां सगलारो करै प्रमाण । राख्या
ते सगला अव्रत है, बाकी सगला पञ्चखाण
॥ ६ ॥ ए नव जातिरो बारज परिग्रहो, तेहनो करै
प्रमाण । मूरछा तै अभिन्तर परिग्रहो, तिणसूं
पाप लागै छै आंण ॥ ७ ॥ बारज परिग्रहो नव
जातिरो, ममता करि ग्रहो छै ताण । तिणसूं यानें
परिग्रह कह्यो, तिणथी पापलागै छै आंण ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरु कहते हैं पञ्चम व्रत में श्रावक परिग्रह की मर्याद
करै, सचित अचित और मिश्र इन तीनों जाति के द्रव्य पर
मूरछा है सोही परिग्रह है जिससे जीवके निरन्तर पाप लग-
ता है, परिग्रह रखना ये बड़ा पाप है इससे चतुर्गति संसार
मयी समुद्र में जीव अनादि कालसे गोता खा रहा है, श्राव-
कों के तीन मनोर्थ में परिग्रह को महा अनर्थ का मूल तथा
असंत दुःखदाई कहा है, परिग्रह में लिप्त रहने वाला जीव
नरक में जाते हैं, तथा यती मार्ग का ध्वंस करने वाला है, इस
लिष्ट परिग्रह की निषेधना ज्ञानीयोंने करी है, सो परिग्रह नव
प्रकारका है—स्वतः १ याने ऊघाड़ी भूमि, वस्तु २ याने ढकी
भूमि यकान वगैरह, हिरण ३ याने चांदी आदि वस्तु, सुवर्ण
४ याने सोना, धन ५ याने रोकड़ रुपया आदि, धान ६ या-
ने अनाज, कुम्भी धातु ७ याने ताँबा पीतल कांसी लोहा आ-

दि, द्विपद ८ याने दास दासी आदि, चौपद ६ याने गाय
भैंस घोड़ा हाथी आदि, ये नव प्रकार का परिग्रह है सो बार्ज
परिग्रह है और इनपर मूरछा रखे सो अभिन्तर परिग्रह है,
बार्ज अभिन्तर परिग्रह से जीव के पाप लगता है इस लिए श्रा-
वक यथा शक्ति इनकी मर्याद करिके त्याग करें सो श्रावक को
पञ्चम व्रत है, आगार रखे सो श्रम है ।

॥ ढाल देसी तेहिज ॥

परिग्रह नूँ परिहार, श्रावक करे विचार, समता
उर धरै ए, नव भेदैं करै ए ॥१॥ खेत्र वधु छै एह,
सोनो रूपो तेह, धन धान द्विपदा ए, कुम्भी धातु
चौपदा ए ॥२॥ ए नव विधि संख्या थाय, त्यांरी
बन्धा देवै मिटाय, त्रण्णा परिहरै ए, मन समता
धरै ए ॥३॥ समता बुरी बलाय चिहूँ गति में भ-
टकाय, घणों रड़ बडै ए, नहीं जक पडै ए ॥४॥
मनसूँ करो विचार, ए नरक तराँ दातार, एहनें
ढालवो ए, व्रतनें पालवो ए ॥५॥ नव जातिरो
परिग्रह ताहि, विचार करी मन मांहि, मूरछा परि-
गरो ए, मार्ग नहीं सुक्तिरो ए ॥६॥ ए मोटो प्रति-
बंध पास, करै बौध बीजरो नांस, मार्ग छै कुमाति-
रो ए, नहीं छै सुक्तिरो ए ॥७॥ परिग्रह छै मोटो

फंद, कर्म तणां छै बंध, नरक ले जावै सही ए,
 तिहां मार घणी कही ए ॥८॥ परिग्रह महा वि-
 कराल, मोठो छै माया जाल, तिण में खूतां सही
 ए, धर्म पावै नहीं ए ॥९॥ कनक कामनी दोय,
 त्यां सेयां दुर्गति होय, फंद छै मोटको ए, त्यांस
 खावैधको ए ॥१०॥ कनक कामनी दोय, पैलाने
 पकड़ावै कोय, तिण फंद में नांख्यो सही ए, नि-
 कल सके नहीं ए ॥११॥ परिग्रह दीधां कहै धर्म,
 ते भूला अज्ञानी भर्म, कर्म घणा सही ए, समझ
 पड़ै नहीं ए ॥१२॥ इण परिग्रह तणां दलाल,
 त्यां में पिण होसी हवाल, दुःख नरकां तणा ए,
 सहसी अति घणा ए ॥१३॥ ए राख्यां लागै छै
 कर्म, रखायां पिण नहीं धर्म, तीन करण सारखा
 ए, कीज्यो पारखा ए ॥१४॥ ए परिग्रहना दातार,
 त्यांरा सावभ जोग व्यापार, मार्ग नहीं मोक्षरो
 ए, छांदो इण लोकरो ए ॥१५॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरु कहते हैं हे भव्य जनों स्नेह वस्तु आदि ए नव-
 हीं जाति का परिग्रह महा दुःखदाई है बौध बीजका नाश क-
 रिके करन दुःखोंका देनेवाला है इससे आदिह मोटा प्राति-

बंध पाश कोई नहीं है इसकी अभिलाषा से ही अशुभ कर्मका बंध होता है तो परिग्रह रखने से या रखाने से तो महा पाप लगता है इस लिए इसकी ममता मत करो ये बड़ा माया जाल फंदा है इस में लिप्त रहनेसे धर्म नहीं किया जाता है कनक और कामनी ए दोनों ही सेनेसे और सेवाने से दुर्गति जाते हैं परंतु कितनेक भविष्यकी जन परिग्रह देनेमें धर्म समझते हैं सो उनकी भूल है अज्ञानवश धर्ममें पड़के पंचमां आश्रयद्वार जो परिग्रह है उससे सेने सेवाने में जिन कथित धर्म ग्रन्थपते हैं, किन्तु एह नहीं विचारते कि परिग्रह रखना सो आश्रय द्वार है जिससे अशुभ कर्म लगते हैं तो दूसरेको देके रखाने और अनुमोदने में धर्म कहाँसे होगा रखना सो पहिला करण है रखाना वा दूसरा करण है और रखते हुए को भला समझना वो तीसरा करण है यदि पहिला करण में पाप है तो दूसरा और तीसरा करणमें धर्म कैसे होसक्ता है, इस लिए बुद्धिमान जनोंको करण जोग की पहिचान करिके यथाशक्ति परिग्रहका त्याग करना चाड़िए शागार रखवा सो अव्रत भेना है और उसमेंसे किमी दूसरे को दिया सो अव्रत सेवाना है सावय जोग व्यापार है देना देवाना आदि यह सब संसार का मार्ग है परंतु मुक्ति का मार्ग कदापि नहीं है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

अशयादिक व्याहृत आहार, श्रावकर परिग्रह संभार, ते खावै खावै सहीए, तियामें धर्म नहीं ए ॥ ४६ ॥ श्रावक ते माँहीं माँहि, देखै लेवे छे

ताहि, ते सघलोही परिगरो ए, इणमें शंका मत
 धरोए ॥ १७ ॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य, तिण
 में आगे पाछे सर्व, ए सघलो परिगरोए, ते ममता
 मांहि खरोए ॥ १८ ॥ सचित अचित सघलाही
 ताहि, ग्रहस्थरे परिग्रह मांहि, कह्यो उबाई उपंग
 में ए, बलि सुयगड़ायंगमें ए ॥ १९ ॥ त्यांरो
 आवक कियो प्रमाण, त्याग्यो ते व्रत पिछाण,
 बाकी अव्रतमें राखीयो ए. सूत्रछै साखीयो ए
 ॥ २० ॥ परिग्रह दियो धर्म हेत, तिणरो आज्ञा
 देत, कहि कहिने दिसावताए, एहवो धर्म करावता
 ए ॥ २१ ॥ इण धनथी अनर्थहोय, धर्म धुरा चालै
 नहीं कोय, भव भव भटकावताए, दुर्गति पहुँचा-
 वताए ॥ २२ ॥ धनथी धर्म न थाय, तीन कालरे
 मांय, मांचो करि जाणिजोए, शंका मत आणिजो
 ए ॥ २३ ॥ इण परिग्रह मांहि रक्त, त्यांनें आवै
 नहीं सम्यक्त, मूच्छा तिणमें सहीए, समझ पड़ै
 नहीं ए ॥ २४ ॥ ज्यारे परिग्रहासूं परतीत, तेतो
 होसी घणां फजीत, नरकां जावसीए, जोखां खाव-
 सीए ॥ २५ ॥ इणथी बधै संसार, जावै नरक नि-
 गोद मझार, घणों रडबडैए, जक नहीं पड़ैए ॥ २६ ॥

सचित अचित द्रव्य ताहि, ग्रहस्थरे अवत भांहि,
ज्यांरो त्याग कियो नहीं ए, त्यांरो पाप लागै सही
ए ॥ २७ ॥ तीन करणा लागै पाप, तिणसुं दुःख
भोगवै आप, त्यानें त्याग्यां व्रत होसीए, जब हो-
सी खुसीए ॥ २८ ॥ करण जोग घालीजे जाण,
कीजे शुद्ध पचकसान, चोखै चित पालजोए, दूषण
टालजोए ॥ २९ ॥

॥ इति पञ्चम व्रत दाल ॥

॥ पाठार्थ ॥

आहार पानी आदि व्यासं प्रकार के आहार श्रावक
के पास हैं सो परिग्रह में हैं उन्हें स्वयं खावै या खुवावै और
भसा जाने जिसमें धर्म नहीं है तथा सचित अचित मिश्र द्रव्य
को ग्रहणी के पास है वो भी परिग्रहमें ही है मतलब जो जो
आहार रखता है सो अव्रतमें है उबाई और सुपगड़ा अंग सूत्र
में खुलासा कदा है त्याग किया सो व्रत और जिस द्रव्य के
हाग नहीं किया सो अव्रतहै, धर्म हेतु परिग्रह दियां दिवायां
और देते हुए को अच्छा समझा सो आश्रव है जिस से पाप
कर्म उपार्जन होता है क्योंकि धन तो अनर्थ का ही मूल है धन
से तो धर्म शीघ्र तो फिर धन के हाग क्यों करे, जितना बन-
सके उतनाही धनोर्पजन करे क्योंकि जितना उपादह धन होगा
उतनाही दैके धर्म करेगा सो फिर धनवान तो बिना तप संयम किए
ही धनके जरियेसे सीधे मोक्षमें चलेजायगे और निर्धन कदापि नहीं
मोक्ष जायगा किन्तु नहीं २ तीन कालमें भी धनमें धर्म नहीं होता है

परिग्रह के तो त्याग करने करावने और अनुमोदन में ही धर्म है, परिग्रह में रक्त रहने वाले को सम्यक्तका लाभ नहीं होता है और सम्यक्त का अभाव में मोक्ष कदापि नहीं जासکتा है, परिग्रहमें तो संसार बधताही है तथा पाप कर्मोपार्जन करिके नरक निगोदादिमें जाके अनन्त दुःखों के भोगी होता है ज्ञानी देवोंने ऐसाही शास्त्रों में कहा है इस लिए सतगुरु कहते हैं हे भव्यजनों! इस परिग्रह को महा दुःखदाई जान के करण जांगों से यथाशक्ति त्याग करो और अपने लिए हुए व्रतको अखंड पालनकरो ।

॥ अथ षष्ठम् दिशि मर्यादा व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणु व्रत धारतां, मोटी बांधी पाल ।
छोटारी अव्रत रही, ते पाप आवै दगचाल ॥१॥
तिण अव्रतनै मेटवा भय्यीं, पहिलो गुणव्रत देख ।
दिशि मर्यादां मांडेन टालै पाप विशेष ॥२॥ मां-
हिली अव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रत धार । द्रव्या-
दिक त्यागन करै, भोगादिक परिहार ॥ ३ ॥ जे
द्रव्यादिक साखिया, जेहनी अव्रत जाण । अर्थ दंड
छूटे नहीं, अनर्थ दंड पचक्खाण ॥४॥ छटो व्रत
श्रावक तणूं करै दिशि तणूं प्रमाण । हिंसादिक
त्यागै छुं दिशातणी, मनमें समता आण ॥५॥

॥ भाषा ॥

उपरोक्त पांच भणू व्रत जो श्रावक भङ्गीकार किए हैं जिससें बोहतसी भव्रत स्थूल पणों में गिती है इन उपरांत जो भव्रत रही है जिससें पाप मयी पानी दगवात आरहा है इसलिये तीन गुन व्रत जाने पञ्च भणू व्रतों को गुनदायक हैं इसलिये उन का वर्णन करत हैं, प्रथम गुनव्रत दिशि गमनका मर्याद, दूसरा गुनव्रत उपभोग परिभोगकी मर्याद, और तीसरा गुनव्रत अनर्थ वस्तुका त्याग है, जिस में पहिला गुनव्रत पूर्वादिदिशि मर्याद करते हैं अर्थात् ऊंची नीची आदि दसों दिशाकी मर्याद करके उपरांत चिन्तादि सावध कार्य करने का मन में समता लाके त्याग करें सो श्रावकका छद्माव्रत है,

॥ ढाल ॥

इया पुर कम्बल कोई न लेसी । फिर चाल्या पाछा परदेसी ॥ एदेसी ॥ ऊंची नीची दिशि कोस वे च्यार । तिण बाहिर सावध परिहार । त्रिछी दिशि पांचसय प्रमाण । इया विधि दिशितणों पचत्ताण ॥ १ ॥ पृथिवी यादिक जीव न मारे, छोटाई भूदतण परिहार । चोरी न करे मईथुन टालै । धनसुं ममता पाछी वालै ॥ २ ॥ मांहि बैठा बाहिरलो लेवो देवो । तिणरा त्याग करे स्वमेवो । बाहिरली वस्तु मांहि मंगावे नाहीं । मांहिली वस्तु बाहिर दे नाहीं ॥ ३ ॥ जघन्यतो येक आश्रव त्यागे कोई । उत्क्रुष्टा आश्रव त्यागे पांचूई ।

एक करण तीन जोगसू जाण । वारला आश्रवरा करै
 पचखाण ॥ ४ ॥ कोई दोय करण तीन जोगसैं ताई ।
 त्यागकरी अव्रत दे मिटाई । कोई तीन करण तीन जो-
 गसू जाण पांचूं आश्रवरा करै पचखाण ॥ ५ ॥ वार-
 ला आश्रवनां कीधा त्याग । अव्रत छोडीछै आणि
 बैराग । तेत्र थकी सर्व तेत्रमें जाण । काल थकी
 जावज्जीव पचखाण ॥ ६ ॥ कोई देवादिक तिणनें
 नाखै बारे । तो पिण नहीं सेवै आश्रव द्वार । कोई
 कष्ट पड़यां राखैछै आगार । पोतारी कचाई जाण
 तिवारे ॥ ७ ॥ कोई मंत्री देवादिकनें बुलावै ।
 तिण आगे आपरो काम करावै । ते पिण छट्टो व्रत
 लियो तिणवार । इतनूं पहिलां राख्यो आगार
 ॥ ८ ॥ इत्यादि राखै आगार अनेक । आगार
 बिना करै नहीं गेक । आगार राख्यां अव्रत पाप
 लागे । बिन आगार कियां व्रत भागे ॥ ९ ॥ छट्टा
 व्रतरो बहु विस्तारो । ते कहितां नहीं आवै पारो ।
 ये संक्षेप कह्यो विस्तार । बुद्धिवन्त जाण लेसी
 अनुसार ॥ १० ॥ छट्टे व्रत एहवा पचखाण ।
 मांहि वणां द्रव्यादिक जाण । तेहनी अव्रत टालण
 काज । सातमूं व्रत कह्यो जिन राज ॥ ११ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

छटा व्रत में श्रावक दसों दिशिका प्रमाण करै सो कहते हैं । ऊंची नीची दिशिका त्याग तो यथाशक्ति दो चार कोसादिक उपरंत जाने का त्याग करै, और तिरछी दिशा अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण तथा विदिशा का पाँचसह या कम ज्यादा कोस यथाशक्ति रखके उपरान्त जाणे का त्याग करै, कदा प्रमाण उपरान्त जाणे को काम पड़नाय तो वहाँ पृथिव्यादि षट्कार्यों को मारने का छोटी बड़ी झूठ बोलने का चोरी करने का मिथुन सेनेका और परिग्रह रखने का त्याग है, जो दिशि में जाने आने का आगार रक्खा है उस जगहें भी बाहर की वस्तु माँहि नहीं मंगावें और माँहि की वस्तु बाहर न भेजें यदि आगार रखें तो उसका प्रमाण करें यथाशक्ति, जघन्य एक आश्रव द्वार सेने का उत्कृष्ट पाँचूँ ही आश्रव द्वार सेने का त्याग करे, कितनेक श्रावक ऐसे होते हैं सो एक करण तीन जोग से त्याग करते हैं कितनेक दोय करण तीन जोग से तथा तीन करण तीन जोग से त्याग करते हैं तात्पर्य जिस जिस भाँगे त्याग करें जिसी भाँगे श्रावक के त्याग होसके हैं, तथा दिशि या प्रमाण किया उसके बाहर से वस्तु मंगाणे का वा उसके उपरान्त जाके आश्रव द्वार सेने का त्याग किया है उन्होंने बैराग्य से अलग होखी है, ए त्याग क्षेत्र यकी सर्व क्षेत्र में कालधकी यावत जीवन पर्यन्त है अर्थात् छटा व्रत के त्याग किञ्चित काल के नहीं होसके हैं, कदा ऐसे त्यागवाले को कोई देवतादि बाहर नाँस दे तो फिर वहाँ पंच आश्रवद्वार नहीं सेना बघाँते उसने त्याग किया है, तथा किसीने कष्ट पड़णे से आ-

गार रख लिया है या अपने मंत्री देवता को बुलाके अनेक काम करते कराते हैं तो वो आगार पहिले रखलना चाहए अर्थात् त्याग करते समय जो आगार रक्खा है सो अपनी कचाई है जिस से अव्रत का पाप लगता है परंतु त्याग का भंग नहीं होता, इसलिए जो आगार नहीं रक्खा वो नहीं करे, और श्रावक अपना छूटा व्रत का पालन निर्दोष करे जिस से यह लोक परलोक में सुखा हो, इस छूटा व्रतके बहोत विस्तार हैं यहां संक्षेप मात्र कहा है इससे बुद्धिवन्त विचार लें ।

॥ इति छूटा व्रत सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ सातमां व्रत प्रारंभ ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत श्रावक तणूं, तिणमें उपभोग परि-
भोगनां त्याग । गमती वस्तु त्यागें तेहनें, आवै
छै बैराम ॥ १ ॥ भोग आवै एक बारमें, ते कहि-
ए उपभोग । बारंवार भोग आवै जीवनें, तिण
नें कह्यो छै परिभोग ॥ २ ॥ उपभोग परिभोगनीं,
अव्रत कही भगवान । त्यागो त्याग करै सतगुरु
करें, ते सातमूं व्रत प्रधान ॥ ३ ॥ उपभोग परि-
भोग काम छै ते भोग महा दुःख खान । किम्पाक
फलनीं दीधी ओपमां, भगवन्त श्री बृधमान ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

जो छद्माव्रत में भागार रखता उसकी अव्रत भेदणों के लिए सातमां व्रत कहते हैं । सातमां व्रत में श्रावक उपभोग परिभोग के त्याग यथाशक्ति करें, जो वस्तु एक वक्त भोगने में काम आवै अर्थात् आहार पानी आदि जिसे उपभोग कहने हैं और जो बारंबार भोगने में आवें जैसे वस्त्र जेवर आदि उन्हें परिभोग कहते हैं, इन उपभोग परिभोगों को भगवन्तों ने किम्पाक फल समान कहा है सो भोगते समय अच्छे लगते हैं और पीछे मरा दुःखों की खान हैं, इसलिए जितना जितना भागार रखें वो अव्रत हैं जिससे पाप कर्मोपरपाजिन होते हैं भागार उपरान्त त्याग सतगुरु के पास किया वो सातमां व्रत है, उपभोगों परिभोगों के बहोत भेद हैं परन्तु इहां छद्मीस बोल करके बताते हैं ।

॥ ढाल ॥

इणपुर कम्बल कोई न लेसी फिर चाल्या पाः
ता परदेसी ॥ एदेसी ॥ अंगोछा १ दांतण २ फ-
ल ३ अभिंगन ४ । उवटण पीठी ५ नें मंजन ६ ।
बग्न ७ विलेपन ८ पुष्प ९ आभरण १० । धूपखे-
पण ११ पीवण १२ नें भरखन १३ ॥ १ ॥ उद-
न १४ रूप १५ पिगय १६ साग १७ विमास ।
महुर १८ जीगण १९ पांगी २० सुख वाम २१ ।

बाहन २२ सयन २३ पत्नी २४ सचित २५ । द्रव्य २६
 संख्या करित्यागे एक चित्त ॥२॥ ए छब्बीस बो-
 लतण्ण प्रमाण । धन्य त्यागै ते समता आण ॥ नाम
 लेई विवरो करलीजे । करण जोग घाली व्रत की-
 जे ॥३॥ ए छाईस बोल भोगवियां संताप । भो-
 ग्यां पिण लागै छै पाप ॥ अनु मोदियां धर्म कि-
 हांथी होय । तीनू हीं करण सरिषा जोय ॥ ४ ॥
 मूर्खरे दिल बात न वैसे । न्याय छोडि भगडा में
 पैसे ॥ सुगुरु छांडि कुगुरु सें परिचा । भारी दूबै करै
 ऊंधी चरचा ॥ ५ ॥ व्रत अव्रत कहि जिन न्या-
 री । समझै नहीं तिणरे कर्म भारी ॥ मूढ मती नव
 तत्व न जाणै । लीथी टेक छोडै नहीं ताणै ॥६॥
 छब्बीस बोल तण्ण आगार । तेतो अव्रत आश्रव
 द्वार ॥ त्यामें केई उपभोग परिभोग । त्यांनै भोगवै ते
 तो सावध जोग ॥ ७ ॥ त्यांरो त्याग करै मन
 समता आण । शक्ति सारू करै पच्छाण ॥ येक करण
 तीन जोगां सें त्यागै । जब पांतै भोगणरो पाप न
 लागै ॥ ८ ॥ दोय करण तीन जोगां सें पच्च-
 खाण । तिण छ भांगारो पाप टाल्यो जाण ॥ तेतो
 पांतै पिण भोगवै नहीं कांथ । दूजा नें पिण भोगा

वै नहीं ताय ॥ ६ ॥ तीन करण तीन जोगां से
 त्यागै । तिण नें नव हीं भांगारो पाप न लागै ॥ भो-
 गवै नहीं भोगावै नाहीं । भोगवणा वाला नें सरा-
 वे नहीं ताही ॥ १० ॥ जे जे सेरी छूटी रही तहाई ।
 तिण से पाप कर्म लागे छै आई ॥ जे सेरी रुकी
 संवर द्वार । तिण से पाप न लागै लगार ॥ ११ ॥
 छूटी सेरी में श्रावक खावै खुवावै । खातां नें पिण
 छूटी सेरी में सरावै ॥ रुकी सेरी में खावै खुवावै नां-
 हीं । अनुमोदना पिण न करे काहीं ॥ १२ ॥ श्रा-
 वक नें मांहो मांहि छकाय खुवावै । बलि छकाय मा-
 री नें जीमावै ॥ ए अव्रत सावद्य जोग व्यापार ॥ ति-
 ण मांहि धर्म नहीं छै लिगार ॥ १३ ॥ श्रावक
 नें मांहो मांहि छकाय खुवावै । बलि छ काय मा-
 री नें जिमावै ॥ तिण मांहि धर्म मिथ्यात्वी जाणें ।
 कर्म तणें बस ऊंधी ताणें ॥ १४ ॥ व्रत आंश्री
 श्रावक नें कह्यो छै धर्मी । अव्रत आंश्री कह्यो अ-
 धर्मी ॥ तिण सूं श्रावक नें धर्माधर्मी जाणें । पन्नव-
 णा भगवती से जोय पिछाणों ॥ १५ ॥ श्रावक
 रो खाणों पीण नें गहण । मांहो मांहि लेण नें
 देण ॥ ए तीन्ह हीं करण अव्रत में घाल्या । उववाई

सुयगड़ा अंग में चाल्या ॥ १६ ॥ शब्द रूप रस
 गंध स्पर्सा । राख्या छै तिणरी लगरीही
 आसा ॥ एहही उपभोग परिभोग । तिणरा मिलै
 छै विधि संजोग ॥ १७ ॥ राख्या छै तिणरी अ-
 ब्रत जाणों । तिणरो समय समय पाप लागै छै
 आणों ॥ त्यांनै त्याग्यां होसी संवर सुख दाय । ति-
 णसैं अब्रतरो पाप मिट जाय ॥ १८ ॥ उपभोग
 परिभोग भोगवै छै जाणि । तिणसूं पाप लागै छै
 आणि ॥ भोगायां सें दूजै करण पाप । तिणसूं होसी
 बहोत संताप ॥ १९ ॥ अनुमोदै तेसरावै जाण ।
 तिणसैं पिण पाप लागै छै आण ॥ श्रावकस उ-
 पभोग परिभोग । ए तीनूं करणा छै सावद्य
 जोग ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

सातमां व्रत में छब्बीस बोलोंकी मर्यादा करिके उपभोग
 परिभोग के त्याग करै वो ब्रतहैं । आगार रक्खा सो अब्रत हैं,
 सो छब्बीस बोल कहत हैं । उलाणिया बिहं अर्थात् अंगोछादि-
 नीं विधि १, दंतण बिहं अर्थात् दंत पखालण की २, फल
 बिहं अर्थात् फल आम्ब दाडिम केला आदिकी विधि ३, अ-
 भिंगण बिहं अर्थात् मर्दन तेल मालिस विधि ४, उवटण बि-
 हं अर्थात् उवटणां पीठी आदिकी विधि ५, मंजन बिहं अर्थात्

स्नान विधि ६, वस्त्र विहं अर्थात् वस्त्रकी विधि ७, बिल्ववन
विहं अर्थात् चंदनादिका विलेपन विधि ८, पुष्प विहं अर्थात्
पुष्पकी विधि ९, आभरण विहं अर्थात् आभूषण गहनां जेवर
आदिकी विधि १०, धूप विहं अर्थात् धूप अग्रादि खेवरों
की विधि ११, पेन विहं अर्थात् दूध आदि पीवणों की विधि
१२, मण्डन विहं अर्थात् खानों की विधि १३, उदन विहं
अर्थात् चावल आदि धानकी विधि १४, सूप विहं अर्थात् दाल
की विधि १५, विगय विहं अर्थात् घृत गुड़ आदि पट विगय
की विधि १६, साग विहं अर्थात् साग तरकारी की विधि
१७, मज्जर विहं अर्थात् मधुरबेलड़ी आदि का फल मेवादि की
विधि १८, जम्भण विहं अर्थात् जीमणे की विधि १९, पाणी
विहं अर्थात् पानी उदक की विधि २०, सुखवास विहं अर्थात्
लवंग सुपारी एलायची आदिकी विधि २१, वाहण विहं अ-
र्थात् गाड़ी धरणी आदि सवारी की विधि २२, सयण विहं
अर्थात् पाट बाजोट कुरसी मेज बिछावणा आदि की विधि
२३, पत्नी विहं अर्थात् पगरखी आदि की विधि २४, सचित
विहं अर्थात् सचित ते जीव सहित पृथिव्यादि की विधि २५,
द्रव्य विहं अर्थात् द्रव्य ते मनेक प्रकारसे खाणें पीणें की सर्वनाम
पी वस्तुओं की विधि २६, उपरोक्त छब्बीस बोलों को समता ल्याके
सांगे उन्हें धन्य हैं, प्रमाण रखके अर्थात् उपरान्त विधि सहित
कारण जोग करिके देसतः सागन करे वो श्रावक का सातपं
अत है, तथा पर छब्बीस बोलों का साग न करे अथवा जितना
जितना आहार रक्खा वो वो अमृत आश्रय द्वार है जिससे
पाप बर्ष लगते हैं आप भोगें सो पाप दूसरे को भोगावे जिस
में भी पाप है वपोंके वो दूसरा कारण है और भोगते हुए को

भना जानें वो तीसरा करण है उसमें भी पाप कर्मोत्पत्तिजन होते हैं, परन्तु मूर्ख मानव के दिलमें ए बात एका इक जचना मठा मुश्किल है वो लोग न्याय की तरफ दृष्टि न देकर उलटे लड़न लग जाते हैं इसका कारण मुगुरुओं को छाड़के कुगुरुओं का परिचय है, किन्तु न्यायाश्रयी और समदृष्टी जीवितो अच्छी तरहमें जानते हैं कि श्रावक के जिस कार्य में पहिले करण पाप हैं तो दूसरे और तीसरे करण में धर्म कदापि नहीं हो सक्ता है, श्रावक का खाना पीना पहरना ओढना आदि सब कार्य अव्रत में हैं ऐसा पाठ खुनासा श्री उववाई तथा सुयगडान्ग सूत्र में है, श्रावक को व्रत आश्रयी धर्मों और अव्रत आश्रयी अधर्मों श्री पन्नवणा भगवती सूत्र में कहा है इन्ही लिए श्रावक को धर्मों अधर्मों तथा व्रताव्रतों कहा है, विवेकी जीवों को विचारणा चाहिए कि जो जो शब्द रूप गंध स्पर्श उपभोग परिभोग आगार रक्ता है जिन्हों की आशा बान्छा लाग रही है उनका संयोग वियोग करता है वो प्रथम करण सँ अव्रताश्रव है उससे पाप लगता है दूसरेको भोगाता है जिससे द्वितिय करण और भोगने वाले की अनुभोदना करता है जिससे करण पाप लगता है । अर्थात् भोग उपभोग के तीनों करण सावध जोग है इनका त्याग करने से श्रावक के व्रत संवर होता है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

जघन्य मज्झम उत्कृष्टा जान । श्रावक गुण
स्तनांरी खान ॥ त्यांरी खाणं पीणं अव्रत में जाणों ।

तिण नै रुडी रीत पिछाणों ॥ २१ ॥ अधन्य
 आवकरे अवत घणोरी । उत्कृष्टा आवकरे अवत थो-
 डेरी ॥ पिणते अवत आश्रव पापरो नालो । तिणसें
 पाप आवि दगचालो ॥ २२ ॥ आवक तप करै
 आणि हुलास । उपवास बेलादिक करै छमांस ॥ सा-
 वद्य जोग रुंध्यां संवर हूवै रुडो । तपसें कर्म करै
 चकचूरो ॥ २३ ॥ तप पूरो हूवां, पछै अवत
 आगार । खावो पीवो ते सावद्य जोग व्यापार ॥ ति-
 णसें कर्म लागै छै आय । ते पाप होसी जीवनें दुः-
 खशय ॥ २४ ॥ पारणुं करै ते पहिले करण
 जाणो । करावे ते दूजै करणा पिछाणो ॥ सरावण
 वालो छै तीजे करणो । यां तीनांरो बुद्धिवन्त क-
 रसी निरणों ॥ २५ ॥ पहिले करण तो पाप बं-
 धावे । तो दूजै करण धर्म किहांथी यावे ॥ तीजे क-
 रण धर्म नहीं छै लिगारायां तीनांरा सावद्य जो-
 ग व्यापार ॥ २६ ॥ सावद्य जोगां सें लागै छै
 पाप । तिणसूं जिन आज्ञा न दे आप ॥ जो आवक
 नै जिमायां धर्म होता । तो अरिहन्त भगवन्त आ-
 ज्ञा देता ॥ २७ ॥ कोई कहै आवक नै जिमायां
 धर्म । ते भूलगया अज्ञानी भ्रम ॥ पोते पिण जीम्यां

लागै पापकर्म, तो ओरां नैं जिमायां किम हो-
 सी धर्म ॥ २८ ॥ कोई कहै लाडू खवायां धर्म ।
 वो तप करै तिणसैं म्हांरा कटसी कर्म ॥ तिणसैं म्हे
 ओरांनैं लाडू खवावां । लाडूवां सटि म्हे उपवास
 करावां ॥ २९ ॥ पाछै तो वो करसी सो उणनैं
 होय । पिण लाडू खवायां धर्म नहीं कोय ॥ लाडू
 खवायां तो एकान्ति पापा श्रीजिन मुखसैं भाख्यो
 छै आप ॥ ३० ॥ श्रावक नैं लाडूड़ा खवायां धर्म
 जो होय । तो एहवो धर्म करै हरखोय ॥ बडा
 बडा श्रावक हुवा धनवत । इम लाडू खवाइने धर्म
 करंत ३१ बडा बडा सेठ सेनापति ताहिल्यारै हुंती घणी
 धर्मरी चाहि ॥ खवायां धर्म हुवै तो आघो नहीं का
 डता । लाडू खवाइ काम सरारै चाढता ॥ ३२ ॥
 जो श्रावक ने लाडू खवायां धर्म । खवावण वाला
 रै कट जाय कर्म ॥ तो चक्रिवर्त वासुदेव बलदेव ।
 यो तो धर्म करता श्वमेव ॥ ३३ ॥ लाडू खवायां हुवै
 जो धर्म । श्रावक नैं लाडू खवायां कट जाय कर्म ॥
 तो च्यारूही जातिरा देव स्वमेव । एहवो धर्म करै
 तत खेव ॥ ३४ ॥ जो एहवा धर्मथी शिव सुखहोय ।
 तो देवता आघो न काढता कोय ॥ एहवो धर्म करी

पूरता मन चाहत । देव भवयी पाधरा मोक्ष पोह-
 चत ॥ ३५ ॥ पिण लाड्डा खवायां तो धर्म छै
 नाहि । खाणों खवावणों अत्रत मांहें । इण मांहि
 धर्म अछै ते भोला । त्थारै मोह कर्म नां छैरे भ-
 कोला ॥ ३६ ॥ लाडू खवायां धर्म नहीं छै भाई ।
 यातो उघाड़ी दीसै विकलाई । योतो लोलपणों
 जिव्भ्यारो स्वाद । पिण भारी कर्मा मांढयो ए
 बाद ॥ ३७ ॥ खाणं खवावणं त्यागै सोय । जब
 सातमं व्रत आवकरै होय । जवरुकसी ते आवता
 कर्म । तेहिज ऊजलो संवर धर्म ॥ ३८ ॥ तीनूं
 हीं करण जुवा २ कीजे । त्याग अनें आगार ओ-
 लखी जे । अव्रत में पाप जाणि छोडीजे । व्रत
 में धर्म जाणी व्रत लीजे ॥ ३९ ॥ मानव भवरो
 लाहोलीजे । दान सुपात्र नें निश्चय दीजे । धर्म
 नृ पारज बेगो कीजे । सतपुरुष सेयां वान्छित
 सीजे ॥ ४० ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

७ प्रथम अध्याय और उत्पद्य ए तीन प्रकार के आधक कहै
 हैं वे आधक प्रथम की स्त्रियों की खान हैं, जितने २ त्याग हैं वो
 २० अक्षय रत्न हैं तथा जो जो आगार खाना है और खाने

पीते हैं वो सब अव्रत हैं वो रत्न नहीं हैं वो तो निर्मल्य का-
च है अपने पास रखें से भी काच और निरधन पणां है,
दूसरे को देने से भी काच और निरधन पणां ही है, जो व्रत-
मयी रत्न सो अपने पास में भी रत्न है तथा जिससे सर्व
कार्य सिद्ध होते हैं और दूसरे को व्रत कराणे से उसको भी
अमूल्य रत्न देना है जिससे उसके भी कार्य सिद्ध होते हैं
अर्थात् जो जो त्याग हैं वो धर्म है जो जयन्त्य श्रावक है उस-
के अव्रत बहोत हैं उत्कृष्ट श्रावक है उसके अव्रत थोड़ी है
अव्रत है सो आश्रव द्वार है याने परनाला है जिस में हांके
पापमयी पानी आता है उसको बंधकरने से चारित्रमयी निज
गुणोत्पन्न होता है, उपवास बेला तेला पटमास आदि तप कर-
ने से खाना पीनादि सावध जोग रूंधते है वो व्रत संवर है
तथा भूख त्रषादि समपरिणामों से सहन करता है जिससे अ-
शुभकर्म क्षय होता है सो निरजरा है तप पूरण हुये से जिस र-
वस्तुओं का भोगोपभोग करने का आगार है वो भोगता है
खाता है पीता है अनेक तरह से सावध जोग व्यापार करता
है जिससे पाप कर्म लगते हैं वो जीवको दुःखदायी है, पार-
णा किया सो प्रथम करण दूसरे को पारण कराया वो दूसरा
करण है ऐसे ही अनुमोदना अर्थात् अच्छा जाना सो तीसरा
करण है, इनका निर्णय बुद्धिवान जन सहज में करसक्ते हैं
विचारणा चाहिए कि प्रथम करण में पाप है तो द्वितीय और
तृतीय करण में धर्म कैसे होगा, तात्पर धारणा पारणा करणे
वाला सावध जोग संता है और उसकी जिन आज्ञा नहीं है
अधर्म हैं तो धारणा या पारणा कराणे वाले को धर्म किसतरह
होगा यदि खिलाने में धर्म है तो खाने में भी धर्म है जो खाने

में धर्म नहीं है तो फिर खिलाने में भी धर्म नहीं है क्योंकि भ-
 धर्म कराने में धर्म कैसे होगा, इस लिए ही आश्वकको खाना
 खिलाना अनुमोदना इन तीनों करणों की श्री जिनेश्वर की तथा
 साधू मुनि राजों की आज्ञा नहीं है यदि आज्ञा होती तो भव
 साधू मुनिराज आश्वक के खाना खिलाना और अनुमोदने की
 आज्ञा क्यों नहीं देते परंतु शुद्ध निग्रंथ साधू तो आज्ञा नहीं दे
 सकते हैं और इस सावद्य कार्य को मन वचन काया करिके
 अच्छा भी नहीं जानते हैं, जो कोई आश्वक को जिमाने में धर्म
 जानते हैं वो भ्रष्टान हैं उनके मोह कर्म की छाक बढोत है इस-
 लिए भ्रष्टादि कालमें खाना और खिलाने को अच्छा समझ
 रहे हैं, समष्टी मनुष्यके तो खाना और खिलाने का त्याग
 करणों में सात्त्विक व्रत होता है, इसलिये सत गुरू वों का कहना
 है व्रत भ्रष्ट को पणार्थ डलखना करिके भ्रष्ट को छोड़ व्रत
 संगीकार करो भ्रष्ट में अधर्म और व्रत में धर्म समझो ए
 मनुष्य धर पाने का साहस्यो कुगुरूवों को छांडकारि सुगुरूवों
 को रेवो और दुपात्र दान दो धर्म कार्य जल्द करो जिससे
 जीवका भसा होगा ।

॥ इति सप्तमं व्रत भाषणं ॥

॥ अथ पंदरह कर्मादान ॥

॥ दोहा ॥

उपभोग परि भोगनूं । सातमूं व्रत प्रधान ।

तिथि मांहीं उपदेसीया । पंदरह कर्मादान ॥१॥

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

ईद लीहाला सोनार उटारा । भडभूज्या कुम्भ
 कार लोहारा । ए कर्म करीने पेट भरीजे । तेह
 अंगालिक कर्म कहीजे ॥ १ ॥ बेचै साग पात
 कंदमूल । फल बीजादिक धाननें तंदूल । बेचै
 फूजादिक सर्व बनराई । ते बण कर्म कहीजेरे
 भाई ॥ २ ॥ बेचै गाडादिक रथ कराई । चोकी
 पाट पलंग बणाई । किंवाड थंभादिक ते बेचावै ।
 ए तीजो साडी कर्म कहावै ॥ ३ ॥ हाट हवेली
 भाडै थापै । रोकड नाणूं व्याजें आपै । गाडादिक
 भाडै दे जेह । भाडी कर्म कहिजे तेह ॥ ४ ॥
 बेचै नालेरादिक फोडी । बलि आखरोट सोपारी
 तोडी । पत्थर फोड दलै पीसै धान । पांचमूं फोडी
 कर्मादान ॥ ५ ॥ कस्तुरी कवडा गज दन्ता ।
 मोती अगर पाप अनन्ता । चर्म हाड सींग जो-
 हार । छट्टो कर्मादान ए धार ॥ ६ ॥ सातमूं
 भेद मैण सल आल । बेचै लाख गुली हरिताल ।
 कसूंवादिक रांगण पास । दोष घणो कह्यो जिन
 तास ॥ ७ ॥ मधु मांस मांखणनें दारू । भारी

विगय कही जिन च्यारूं । दूध दही घृत तेल गुड़
जाण । आठमूं ए रस बाणिज्य पिछाण ॥ ८ ॥
वेचें ऊंट गधा बैल गाय । घोडा हाती भैंस मंगाय ।
ऊन रूई रेसम थान वणांय । केस बाणिज्य ए
नवमूं शाय ॥ ९ ॥ सींगी मोरोनें आफू सार ।
लीलो थूथो सोमल खार । हरवंसी नर वंसी वि-
गजै । ए दसमूं विष बाणिज्य कहिजै ॥ १० ॥
तिल सरस्यूं प्रमुख पिलावै । इष्ट रसनां घाण
कटावै । जंत पीलण इज्ञारमूं कर्म । करतां बधै
घणो अधर्म ॥ ११ ॥ कान फडावै नांक बिधावै ।
पापी कसिया बैल करावै । बारमूं कर्मादान निल-
च्छन । व्रत धारी नें लागै लंछन ॥ १२ ॥ बालै
गाग नगर करि लाय । अटव्यादिक में दव दे
लगाय ॥ बालै मूरडानें दव आपै । तेरमूं कर्म
हसी पर व्यापै ॥ १३ ॥ चवदमूं भांजै नहीं द्रह तीर ।
खेतमांहि आणी घालै नीर ॥ सर द्रह तलाव बूर
सोपंत । एकर्म करी जीव नरक पडंत ॥ १४ ॥
साधु दिना सघला पोषीजे । पन्नरमूं असंजती पो-
ष कहिजे ॥ रोजगारले त्यां ऊपर रहवै । खाणूं
पीणूं असंजती नें देवै ॥ १५ ॥ ए पंदरह कर्मा-

दान बिस्तार । मर्याद बांधि करै परिहार ॥ ए
पंदरह कछा सावद्य जांग व्यापार । करै श्राजी-
वका चलावण हार ॥१६॥

॥ शान्ति सप्तम् व्रतम् ॥

॥ भावार्थ ॥

उपभोग परिभोग के त्याग करै सो सातमात्रन कछा जि-
समें पंदरह कर्मादान कहे सो कहते हैं अंगालि कम्मे १ अर्थात्
अंगालिक कर्म ईंट कोला कली चूना भट्टी वगेरह में बनाना
तथा सोनारका काम ठठेरका काम भड़भूजाका काम सोहारका
काम तथा कोयला आदि आग्नि द्वारा काम करना उसे अंगा-
लिक कर्म कहते हैं । वणकम्मे २ अर्थात् वनस्पति हरी नीलो-
ती साग पात फल फूल का काम करना तथा बेचना । साडि
कम्मे ३ अर्थात् साटी कर्म काष्ठका गाढा रथ चौकी तखते
पर्यंक कपाट स्थम्भ आदि लकड़ीकी अनेक वस्तुओंको बना
वनाके बेचना । भाडी कम्मे ४ अर्थात् भाड़ाकर्म दुकान मकान
जमीन गाढा गाडी प्रमुखको भाड़े देना तथा रोकड़ रुपयादि
को व्याज देना । फोडी कम्मे ५ अर्थात् तोड़ने फोड़नेका काम
नारेल सोपारी आखरोट पत्थर आदिको तोड़ तोड़के बेचना
तथा अनाजको दलना पीसना आदि । दंत बाणिज्जे ६ अर्थात्
दन्तादिका व्यापार—कस्तूरी केवडा गज दन्त मोती चमड़ा
हाड आदिका व्यापार—सखल बाणिज्जे ७ अर्थात् लाख आल
मोम खगुली हरिताल आदिका व्यापार । रसबाणिज्जे ८

अर्थात् घृत गुड तेल दूध दही तथा मदिरा मानस मांसण सैत
आदिका व्यापार । केस बाणिज्ये ६ अर्थात् केसोंके निमित्त
ऊंट गधा गाय बैल घोड़ा हाती आदिका व्यापार तथा ऊन
रई रेशम आदिका व्यापार । विप बाणिज्ये १० अर्थात् वि-
पका व्यापार-सींगी मोरा अमल आक पोस्तडोही लीलाथूता
सोमलहार हरदंभी नरदंभी आदि विपका बाणिज्य । जंत
पिलाणियां कम्मे ११ अर्थात् जंत घांणी कल मसीन आदिमें
तिल सरसू प्रमुखको पीसना पिलाना तथा सांटा आदिका
पांण कटवाना । निलच्छन कम्मे १२ अर्थात् कानफड़ाना नांक
बिधाना तथा दलद प्रमुखको वादी करना । दवक बाणियां
कम्मे १३ अर्थात् ग्राम नगर मटवी आदिमें आग्रे लगाना
सर दह तलाव सोपणियां कम्मे १४ अर्थात् सरदह तलाव
नदी प्रमुखको बूरन सोपंत करना या नाला मोरीको खोल-
नादि । असईण पोपणियां कम्मे १५ अर्थात् असती जन ते
असंजतीको पोपणेका काम साधु बिना सबको पोपना तथा
असंजती जीवोंको पोपनेके निमित्त राजागर लेके रहना । उ-
परोक्त पंद्रह कार्यादान बहे सो सर्व कर्म बंधनके कारण है
ए० आश्वको छोटे योग्य हैं परंतु आदरणे योग्य नहीं हैं
प्रशस्ति से न छोड़े जाय तो इनकी मर्याद करिके उपरान्तके
साम कर सो मत हैं आगार रखता सो अग्रत है जिससे पाप
कर्म सगत हैं ।

॥ इति सप्तमः भावार्थः ॥

॥ अथ अष्टमं अनर्थ दंड परिहार व्रत ॥

॥ दोहा ॥

सातमं व्रत पूरो थयो । हिव आठमांनूं वि-
स्तार ॥ अर्थ अनर्थ ओलखवा भणीं । तेहनूं सुणीं
विचार ॥१॥ सातव्रत आदरतां थकां । बाकी अव्रत
रहीछै ताय ॥ तिणसैं निरन्तर जीवरै । पाप लागै
छै आय ॥२॥ तिण अव्रतरा दोय भेदछै । तिणमें
एक अनर्थ दंड जाण ॥ दूजी अव्रत अर्थ दंड
तणीं । त्यासूं पाप लागै छै आणि ॥३॥ अर्थ ते
मतलब आपरै । सावद्य करै विविद प्रकार ॥ अ-
नर्थ ते मतलब बिना । पाप करतां डरै न लि-
गार ॥४॥ पाप करै अर्थ अनर्थ कारणें । त्यानें
रूडी रीत पिछाण ॥ अर्थ दंड छोडणूं दोहिलो ।
पिण अनर्थरा करै पचखुवाण ॥५॥ अनर्थ दंड
तणां भेद अतिघणां । ते पूरा कह्या न जाय ॥
थोडासा प्रगट करूं ते सुणिजो चित ल्याय ॥६॥

॥ भावार्थ ॥

अब आठवां व्रतमें अनर्थ दंडके परिहार करनेकी विधि
बताते हैं पूर्वोक्त सातव्रत आदरते जो अव्रत रही उसमें जीवके

निरन्तर पाप लगते हैं जिसमें एकतो अर्थ दूसरा अनर्थ, अर्थ-
तो अपने मतलबके लिए और अनर्थ बिना मतलब सावध
जोग बर्ताना, ग्रहस्थले यदि अपने मतलबके लिए पाप करनेका
चाह न हो सके तो बिना मतलब पाप करनेका सागतो अव-
श्य करना चाहिए जिसमें अनर्थ दंडकी अवत में पड़े, अनर्थ
पाप अनेक तरहसे होता है परन्तु ईहां अलपता वर्णन करिके
करते हैं ।

॥ ढाल चाल तेहिजे ॥

पहिलो भेद कह्यो अपध्याम । तिगुंथी बांधै
अनर्थ खान ॥ बीजो भेद प्रमादज आखै । घ-
तादि ठाम ऊघाडा रखै ॥१॥ सस्र जोड करे वि-
स्तार । पाप उपदेस देवै विविध प्रकार ॥ ए अ-
नर्थता करे पचखान । सूधी पालै जिनवर आं-
ग ॥२॥ अनर्थ दंड केम कहिजे । अर्थ दंड सेती
उलखीजे ॥ तेहना भेद विवध प्रकार । संक्षेप
गाय वरं विस्तार ॥३॥ सांठा ध्यानरा दोय प्रकार ।
जे लगयें ध्याये नरनार ॥ आर्त रौद्र ध्यान ध्याये
लोग । पापें विवध हरे नें लोग ॥४॥ शब्दा-
दिक इन्द्रियां नां भोग । तेहनूं बँधै संयोग वि-
योग ॥ रोगादिक लागै अलगपता । भोग
भोगवता लागै नगता ॥५॥ इसविधि जीव रचे

नें विरचै । आप अर्थ कुटुम्ब नें परिचै ॥ ठाकुर
 चाकर संगी स्नेही । बोहरानें धुरया आदि देई द
 जिण सुखिबे सुख वेदै आप । तिण दुःखयें पामें
 सोम संताप ॥ ते पिण ठालै समता आंग ।
 अनर्थ ध्याचारा पचखान ॥७॥ रौद्र ध्यान हिन्सा
 जे ध्यावै । झूट चोरी बंदीखान दिसावै ॥ अर्थ
 करै पिण धूजै तन्न । अनर्थ ध्यान तजै एक
 मन्न ॥८॥ घृतादिक पिण विणज करंतां । धूमा-
 दिक कारज अण सरतां । इण विधि अर्थ उघा-
 डा राखै त्हाई । तिण रा जतन करै चितल्याई ॥९॥
 प्रमादनें बस आलस आणो । उघाडा राखण रा पच-
 खाण । घरटी ऊखल मूसल राखै । म्हारै सरे नहीं
 इण पाखै ॥ १० ॥ अनर्थ राखण रा पचखाण ।
 एहवो व्रत करै मन जाण । अर्थे पिण राखंता
 शंकाय । अनर्थ पिण नहीं राखै त्हाय ॥ ११ ॥
 भाई भतीजा चाकर पेल । त्यांने दे बापरा उपदेस ।
 खेती बाणिज्य सोदा करो भाई । जुं दैओ खासी
 किणरी कमाई ॥ १२ ॥ बुद्धिवन्त नर ज्ञान सें
 देखै । कहितां लागै पाप विसेख । तो अनर्थ
 कुण घरमें घालै । । तिण थी कर्मज मैला

माँहें ॥ १३ ॥ जस कीर्तिमान बढ़ाई काजै
बलि सरमां सरमीं लोकांरी लाजि । बलि घर उ-
दारणारे ताई । हिंसादि करै ते अर्थ दण्ड
मांहीं ॥ १४ ॥ जिग कर्तव्य कियां करै लोक
भण्ड । ते कर्तव्य छै अनर्थ दण्ड । छ छंडी
राखी ते अर्थ दण्ड मांही । त्यांरै काजै हिंसादि
करै छे ताहि ॥ १५ ॥

॥ भाषार्थ ॥

आत्मा दो प्रकार सें दण्ड पाती है एकतो अर्थ दूसरा
अनर्थ करिके पाप लगता है जिस अनर्थ दण्ड के चार भेद
हैं—अपध्यान १ हंसपयाण २ प्रमाद ३ पाप कर्मका उपदेस ४
५ चार प्रकार सें जीव दण्डित होता है, अपणें मतलब सें
करै सो अर्थ दण्ड है और बिनामतलब करै वो अनर्थ दण्ड
है, सब उपरोक्त चारों भेदों का संक्षेप सें वर्णन करते हैं—
अपध्यान के दो भेद एकतो आर्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, श-
त्रुआदि पंच इन्द्रियों की तेषीस विषयकी इच्छा करना प्रिय
वस्तुओं का संगोग की चाहना और शत्रिय वस्तुओं का
विरोध रंजना, गिरोग्यता गृह साना सें गृही और अगिरोग्यता
प्रभास सें गाराज सेना सो आर्तध्यान है, परजीव की हिंसा
रंजना रंजना दोषता दूसरको दुःख देना बंद करनादि आन्ध्र
सो रौद्रध्यान है, यह प्रथम भेद कहा । हिंसा सें प्रवर्तना मनु
को जीवना सीखा करना यह दूसरा भेद है, प्रमाद वम होके

घृत के तेल आदिके बरतनों को उघाडा रखना जिससे अनेक जीवों की हिंसा होय तथा चक्की ऊखल मूमल जंत्र आदि-को देखे बिना चलाना सो तीसरा भेद है । और पाप कर्म करने का उपदेस जैसे भाई भतीजा आदि दूसरे को कहना बैठे बैठे क्या करते हो खेती करो कूवा तालाब खोदो बाणिज्य व्यापार करो आदि अनेक तरहें से पाप का उपदेस देना ये चौथा भेद जानना । उपरोक्त ये चारुं प्रकार से अपणें अर्थ करै सो अर्थ दण्ड और बिना अर्थ करै सो अनर्थ दण्ड है, अपणी बडाई सोभाके निमित तथा अभिमान के बस या सरमां सरमी लोकों की लाज से स्वार्थ वस होके उपरोक्त चारुं के करने से पाप लगता है परन्तु वो तो अर्थ दण्ड है, बिना मत-लब या जिस कर्तव्य करने से लौकिक में निन्दा हो सो अनर्थ दण्ड है, इसलिये श्रावक को अनर्थ दण्ड करने का साग करना चाहिए तथा अर्थ दण्डकाभी मर्याद उपरांत परिहार करना बाजब है, श्रावक अर्थ दण्ड का या अनर्थ दण्ड का साग किया सो ब्रत है आगार रक्खा सो अन्नत है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

सुयगडा अंग अव्ययन अठारमां मंभार ।
अनर्थरा आठ कहा छै आगार । आत्मा न्याती
लारै काम । हिंसादिक करै छै ताम ॥ १६ ॥
आधार ते घर हाट दिक काम । परिवारनें दास
दासी नाम । मंत्री नाग भूत यत्त देव । त्यांरे

निमित्त हिंसादि करै स्वमेव ॥ १७ ॥ यह लोक
 नै परलोग । जीवणूं मरुणूं नै काम भोग । यारै
 अर्थ बान्छा किया पाप लागै । अनर्थ किया
 आठमूं व्रत भागै ॥ १८ ॥ असंयती जीवारां जी-
 वणूं चावै । असंयती जीयां सैं हर्षित थावै । अर्थे
 बंछ्यां तो अर्थ पाप लागै । अनर्थ बंछ्यां आठमूं
 व्रत भागै ॥ १९ ॥ असंयतीरो मरणां चावै ।
 अथवा त्यानै मारै मरावै । अर्थे मार्यां मरायां
 पाप लागै । अनर्थ मार्यां मरायां व्रत भागै ॥ २० ॥
 प्रहारि नै काम भोग भोगायवो चावै । अथवा
 त्यानै काम भोग भोगावै । अर्थे भोगायां पाप
 लागै । अनर्थे भोगावियां व्रत भागै ॥ २१ ॥
 प्रहारि नै उपभोग परिभोग भोगावै । तिण नि-
 श्रय पाप कर्म बंधावै । अर्थे भोगायां तो अर्थ पाप
 लागै । अनर्थ भोगायां आठमूं व्रत भागै ॥ २२ ॥
 प्रहारिरो काम करै अस मात । तिणै निश्रय
 पाप लागै साक्षात । अर्थे कियां तो अर्थ पाप
 लागै । अनर्थ कियां आठमूं व्रत भागै ॥ २३ ॥
 कहि कहि नै कितनूं दूका केहूं । अर्थ अनर्थ दण्ड
 नै केहूं । तिण नै अर्दरी अव्रत राखी छै जाण ।

अनर्थ दण्ड तणां पचखाण ॥ २४ ॥ यानें रुडी
 रीत पिछाणी लीजे । करण जोग घालीव्रत की-
 जे । यामें रुकी सेरी तिथा मांहि धर्म । छुटी सेरी
 तेहिज अधर्म ॥ २५ ॥ आठमां व्रतरो बहोत वि-
 चार । यो अल्प मात्र कियो विस्तार । हिव नव-
 मूं व्रत कहूं छूं ताय । सांभल ज्यो भवियण चित
 ल्याय ॥ २६ ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

सुपगुडा अंग सूत्र में अनर्थ दण्ड के आठ प्रकार के आ-
 गार श्रावक के कहा है—आएहिउवा १ अर्थात् अपनी आत्मा
 के हेतु, नाएहेउवा २ अर्थात् न्यातीलों के हेतु, आघारे हेउवा ३
 अर्थात् अपने घरके हेतु, पारिवारे हेउवा ४ अर्थात् परिवार पुत्र
 पौत्रादि तथा दास दासी के हेतु, मिच्छहेउवा ५ अर्थात् मंत्री
 के हेतु, नाग हेउवा ६ अर्थात् नाग देवता के हेतु, भूएहेउवा ७
 अर्थात् भूत के हेतु, जखल हेउवा ८ अर्थात् यत्न के हेतु, ये
 आठ प्रकार के आगार उपरान्त श्रावक के अनर्थ दंड के त्याग
 हैं सो आठमां व्रत है, व्रत है सोही धर्म है, आगार रखला सो
 अव्रत है अपनी कच्चाई है, किन्तु अपनी आत्मा के निमित्त
 यावत् यत्न निमित्त जो जो हिंसादि करता है उस में धर्म
 नहीं है, एहलोक परलोक जिवितव्य मरख काम भोग इन
 पांचुं की वृद्धनां अपने मतलब के लिए करने से पाप लगता
 है और बिना मतलब किये आठमां व्रत का भंग होता है, ऐसे

हो भयंकर जीवों का जीवन्म मरना अपणों भर्ष के लिए
 बान्धुनें में पाप कर्म का बन्ध होता है और बिना भर्ष बान्धु-
 नें में सप्तमव्रत खण्ड होता है, ग्रहस्थि को काम भोग भोगाने
 की इच्छा अपणों स्वार्थ के लिए करे या भोगावे तो पाप, बिना
 स्वार्थ ग्रहस्थि को काम भोग भोगावे तो साठवां व्रत का भंग,
 तात्पर ग्रहस्थि का अंग मात्र काम करना कराना अनुमोदना
 इन तीन करणों में पाप है श्रावक करता कराता है सो धर्म
 नहीं है ऐसारिक व्यवहार है । धर्म तो बोही है कि जितने २
 त्याग हैं। श्यामी भीखनजी कहते है कि अब कहि कहके किन्न-
 या कहें भर्ष और अनर्घ इन दो प्रकारों से पाप लागता है इस
 लिए श्रावक के अनर्घ पाप करने का लाग साठवां व्रत में है,
 इस साठवां व्रत को सच्छी तरह समझ के यथासक्ति करण
 योग युक्ति लाग करना चाहिए जिनमें अपना व्रत भंग न हो
 जो सरी रुकी है सो धर्म है नहीं रुकी वो अधर्म है, ॥ इति ॥

॥ अथ नवमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अशां व्रत पालतां । सुगु व्रत देश कहा-
 य । शिखा व्रत स्यात् चोदडी । कहै उपमां
 ल्याव ॥५॥ जिन देवल कलसो चहै । सुकुट मस्तक
 भेज । इस समदही जीवता । शिखा व्रत पालं-
 ता ॥ ६ ॥ व्रत साहं पहिली कथा । जाव जीव

लगजासु । शिखा व्रत च्यासुं तणां । विविध पणै
 पचखाण ॥ ३ ॥ सामायक महुरत येकनीं । जो
 करै चित ल्याय । देशावगासी व्रत नां । जेम करै
 तिमथाय ॥ ४ ॥ पोसो हुवै दिन रातरो । ध्यावै
 निरमल ध्यान । बारमूं व्रत शुद्ध साधुनें । प्रति-
 लाभ्यां श्री जान ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

पाँच अणू व्रत अर्थात् महाव्रतों से छोटे, तीन गुण व्रत
 याने, पंच अणू व्रतों को गुण दायक ए आठ व्रत तो कहे अब
 इन व्रतों के शिखा समान चार शिखा व्रत कहते हैं, जैसे मं-
 दिर के कलशा और मस्तक के मुकुट है वैसे ही आठ व्रतों के
 ये चार व्रत हैं, पहले व्रत से आठवां व्रत तक के साग तो
 जावज्जीव पर्यंत होते हैं किञ्चित् काल के नहीं होवे और इन
 च्यासुं व्रतों में प्रथम व्रत तो येक महुरत का है, दूसरा जितना
 काल के करें उतना ही कल का होता है, तीसरा दिवस रात्रि
 प्रमाण होता है, और चौथा शिखा व्रत शुद्ध साधू मुनिराजों
 को निर्दोष आहार पानी आदि चवदह प्रकार का दान देनें
 से होता है, जिस में प्रथम शिखा व्रत कहते हैं ।

॥ ढाल ॥

[मम करो काया माया कारमी ॥ एवेसी ॥]

सामायिक समता पणै । सावद्य जोग पचखा-
 णा जी । काल यकी महूस्त एकनीं । दुविहं ति-

विहेणं जाणजी ॥ शिस्वाजीवत आराधिण
 ॥ १ ॥ उत्कृष्टे भांगेकरी । तीनकरण तीन जोग
 जी ॥ ब्रह्मासतणी वार्ता तणों । न करै हर्ष नें
 सोगजी ॥ शि ॥ २ ॥ उपगण सामायक करतां
 राखीया ॥ तिण उपरान्त किया पचखाणजी ॥
 राख्याते अवत परिभोगरी । तिणरो पाप निरन्तर
 जाणजी ॥ शि ॥ ३ ॥ जेउपग्रण सामायी में रा-
 खीया । त्यांरो पिण करै प्रमाणजी ॥ बाकी तीन
 करण तीन जोगसूं । पांचुंही आश्रवनां पचखाण
 जी ॥ शि ॥ ४ ॥ ते उपग्रहण पहरे ओढै बावरे ।
 विद्यावणादिक करै बारंबार जी । ते शरीर री साता
 पारणें । तेतो सावद्य जोग व्यापार जी ॥ शि ॥
 ॥ ५ ॥ बलि गहणां आभरण कर्ने रखा ॥ ते
 पिण अवतमें जाण जी ॥ तिणरो पाप निरन्तर
 जीवरे । सामायिक में पिण लगैछे आंण जी ॥
 ॥ शि ॥ ६ ॥ ते गहणां आभरण जतन करै ।
 त्यांसें राजी हुवे तिणवार जी ॥ आधा पाछा
 समार तिण अवतरे । सावद्य जोग व्यापार जी ॥
 शि ॥ ७ ॥ उपग्रण गहणां कर्ने राखीया । तेतो
 नती आवे समारै कामजी ॥ कामतो आवपरि-

भोगमें । सुखसाता सोभादिक तामजी ॥ शि ॥
 ॥ ८ ॥ सामाई री दीधीजिन आगन्यां । ते सा-
 माई छै संवर धर्म जी ॥ उपग्रण गहणां परि
 भोगव्यां ॥ तिणसैं तो लागै छै पापकर्म जी ॥
 शि ॥ ९ ॥ समाई में श्रावक री आतमां । अधि-
 करण कही जिनरायजी ॥ भगवती रै शतक सातमें ।
 पहिला उद्देसा रै मांयजी ॥ शि ॥ १० ॥ अधि-
 करण ते सख छकायनों । तिणरो साथगे करै अं-
 समातजी ॥ तिणरी सार संभार जतन करै । ते
 सावद्य जोग साक्षातजी ॥ शि ॥ ११ ॥ कपडो
 ओढि पहै बायै । बलि बैयाबच करै तायजी ॥
 तिण अधिकरणनैं सांतरो कियो । तिणरी आज्ञा
 नहीं दे जिनरायजी ॥ शि ॥ १२ ॥ अंस मात्र
 शरीर रो कारज करै । तेतो सावद्य जोगछै तायजी ।
 तिणसुं पाप लागेछै जीवै । तिणरी आज्ञानहीं
 देवै जिनराय जी ॥ शि ॥ १३ ॥ हालबो चाल
 बो शरीर रो । सुखसाता काज करै जाण जी ॥
 ते सावद्य जोग श्रीजिन कहा । तिणसूं पाप कर्म
 लाग छै आणि जी ॥ शि ॥ १४ ॥ जिण कर्तव्य
 कियां जिन आज्ञा नहीं । ते सावद्य जोग साक्षात

जी ॥ जिग कर्तव्य कियां छै जिन आज्ञा । ते
 निरवध जोग विख्यातजी शि ॥ १५ ॥ उपग्रण
 गहणां शरीरनां । जतन करै समाई संभार जी ॥
 त्यानें जिन आज्ञा नहीं सर्वथा । ते सावध जोग
 तणां व्यापार जी ॥ शि ॥ १६ ॥ कनै राख्यो त्यांरा
 जतन करै । यो राख्यो समाई में आगार जी ॥
 समाई करतां जे नहीं राखीया । त्यांरा जतन नहीं
 करै लिगार जी ॥ शि ॥ १७ ॥ आवश्यक रा उपग्रण
 अवत मकै । कछा उववाई नें सुयगडा अंगजी ॥
 त्यानें सेवै सेवौ ते सावध जोग छै । तिगरी
 आज्ञा नहीं दें जिनरंग जी ॥ शि ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक अर्थात् याने समभाव रखना समता रखना
 उपग्रो समाई कहते हैं एक महारत तक सावध जोगके त्याग
 करे अथवा दो कारण तीन जोगमें उत्कृष्ट तीन कारण तीन
 जोगमें जानना, सामायिक में ग्रहस्थाश्रमकी बातें निन्दा विक-
 पादि नहीं करना और जो कपडा आदि उपग्रण समाई में
 रखे हैं जो जतन है आगार उपरान्त सावध जोगके त्याग
 बिना है सो सामायिक है जिसमें आवश्यकके संहर होता है बाकी
 जो जो उपग्रण तथा गहणां रखता है सो सावध जोग है जिसमें
 पाए वर्ग विरक्त रहता है वदों के जो कपडा तथा गहणां
 आदि आगार रखता है सो अग्र है उपग्रणोंकी सार संभार

करता है विछावणादि बार बार करता है सो शरीरकी साता के लिये हैं उससे सामाइक पुष्ट नहीं होती इसलिये सावद्य जोग व्यापार है, गहणा कपडादि जो रक्खा है वो सामाइकके काम नहीं आते हैं वोतो परिभोग के काम आते हैं अथवा अपणी सोभा के निमित्त पहरेते ओढते हैं, सामाइक की श्रीजिनेश्वरदेवों की आज्ञा है किन्तु उपग्रण कर्ने रक्खा उसकी आज्ञा नहीं है इसलिए उन्हे परिभोगव्यां पापकर्म लगता है, श्री भगवती सूत्रके सातमां शतक पहला उद्देशमें सामाइक में आवककी आतमा अधिकरण कहि है और अधिकरण है सो छकाय जीवोंका शस्त्र है तो शस्त्रकी सार संभार करेसो निरवद्य जोग कैसे हो सकते हैं वो तो सावद्य जोगही है इसलिए जिन आज्ञा नहीं है, तात्पर जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है निरवद्य जोग है और जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य जोग है।

॥ ढालतेहिज ॥

कोई कहै सामाइक कीधीतेहनें । सावद्य जोग-पचखाणजी ॥ तिणरै पापरो आगार किहांथी रह्यो । कोई एहवी पूछाकरै आंणजी ॥ शि ॥ १६ ॥ तेहनें जवाब इम दीजीए । सर्व सावद्यरा नहीं पचखाणजी ॥ सर्व सावद्यरात्याग साधांतणें । तेहनी करो पिछाणजी ॥ शि ॥ २० ॥ छ भांगा समाई में पचखिया । तिणरै तीन भांगारो आगारजी ॥ तिणरै पाप लागैछै निरंतरै । एहवा सावद्य जोग

व्यापारजी ॥ शि ॥ २१ ॥ तिणै पुत्रादिक हुआं
 हर्ष हुवै । मूवां गयां होवै सोगजी ॥ इत्यादि आ-
 गार समाधिक मभै । एहवा समाधिक में सावद्य
 जोगजी ॥ २२ ॥ गहणां कपडा राख्या तेहना ।
 जतन करै समाई रे मांयजी ॥ तेपिण सावद्य
 जोग छै । तिणरी आजा न देवै जिनरायजी
 ॥ शि ॥ २३ ॥ शरीर कपडादिक तेहनां । जतन
 करै समाधिक मांयजी ॥ लाय चोरादिक राभयथ-
 की । एकान्त स्थानक जयणा सैं जायजी । शि ।
 ॥ २४ ॥ तेपिण सावद्य जोग छै । आगार सेयो
 समाई रे मांयजी ॥ सामाधिक में समता राखणी ।
 धित न चलावण ताहिजी ॥ शि ॥ २५ ॥ लाय
 नर्पादिक रा भयथकी । जयणासूं निसर जाय
 भागजी ॥ पाखती मनुष बैठाहुवै । त्यांनै तो नहीं
 लेजावै बाहर जी ॥ शि ॥ २६ ॥ आपरो तो
 आगार राखीयो । आरां रो नहीं छै आगारजी ॥
 आरां नै त्याग्या समाई मभै । त्यांनै किण विधि
 लेजावै बाहरजी ॥ शि ॥ २७ ॥ लाय चोरादिक
 रा भयथकी । राख्या ते द्रव्य ले जायजी ॥ पाख
 ती कपडादिक हुवै घणां । त्यांनै तो बाहर न ले

जावै त्हायजी ॥ शि ॥ २८ ॥ राख्याते द्रव्य ले
जावतां । समाई धे भंग न थायजी ॥ त्याग्या छै
त्यानें ले जावतां । समाई से व्रत आग जायजी
॥ शि ॥ २९ ॥ तिणसूं सर्व सावद्य जोगरा ।
समाई में नहीं पचखाणजी ॥ आगार उपरान्त
सावद्य जोगरा । पचखाण किया छै पिछाणजी
॥ शि ॥ ३० ॥ तिणसूं त्याग किया तिके । ते
सावद्य जोगरा पचखाणजी । त्याग नहीं सर्व सावद्य
जोगरा । ते तो सारा साधु तणे जाणजी ॥ शि ॥ ३१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक में सावद्य जोग के त्याग हैं सो सर्वतः नहीं
है देशतः है, तब कोई कहै सामायिक पचखते वक्त सावद्य जो-
ग के त्याग करते हैं उस वक्त कोनसा पाप करणे का आगार
है ऐसा कहै उन्हे जवाब देना चाहिए कि साधूकेतो “सर्व
सावज्झं जोगं पचखामि” ऐसा पाठ है और श्रावक के
सामायिक में “सावज्झं जोगं पचखामि” ऐसा पाठ कहा है
तो खुन्नासा मालूम होगया कि श्रावक के सामायिक में सर्व
सावद्य जोग के त्याग नहीं है, तथा छ भांगारों सामाहक कर-
नेमें तीन भांगे आगार रहा सो सावद्य है उनका पाप अव्रत
का निरंतर जीवके सायाइक में लागता है अर्थात् अनुमोद-
नेका मन वचन काया आगार है, पुत्रादि होनेकी खबर सुनके हर्ष
और मरनेकी बा खोये गयेकी सुनके सोग आता है और जो गहना

लांरा किया पच खाणजी ॥ खेत्र थी सर्व क्षेत्र
 मभै । काल थी मऊस्त एक जाणजी ॥ शि
 ॥ ३३ ॥ भाव यकी राग द्वेष रहित छै । जव
 संबर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीतै समाई
 ओलखी करै । जव सामाइक हुवै तायजी ॥
 शि ॥ ३४ ॥ अवसर सघला नें त्याग दिया ।
 त्यांसू करै संभोगजी ॥ तिणसूं भांगै समाई व्र-
 त तेहनूं । इणरा बर्त्त्या छै सावद्य जोगजी ॥
 शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई में सामाई तणूं । का-
 रज करणू राख्यो छै आगार जी ॥ तिणरो कार्य
 क्रियां समाई भांगै नहीं । तिणरो पिण करै विचा-
 रजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई में मांहो मांहि कार-
 ज करै । तैतो सूत्रमें नहीं छै तायजी ॥ ते निश्चय
 थापणी आवै नहीं । ज्ञानी बदे ते सत्य बायजी
 ॥ शि ॥ ३७ ॥ केई कहें समाई में राखी पूंजणी
 । राखीते दयारै कामजी ॥ तिणरो जवाब सृणू
 विवरा सुद्धे । चित राखी एकंत ठामजी ॥ शि
 ॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजै समाई मभै । मात्रादि
 परैठे पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नहीं ।
 तिणमें धर्म कहै ते अबूझजी ॥ शि ॥ ३९ ॥

मृगीर पूंजे परछे मांजो । ए शरीरादिकराछे काजजी ॥
 जो धर्म तणु कारज हुवे । तो आज्ञा देवै जिन
 राजजी ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणुं परछणुं करै न-
 ही । कायस्थिर राखै येक ठामजी ॥ हस्तादिक
 बिना हलावियां । रहणी नहीं आवैछे तामजी ॥
 ॥ शि ॥ ४१ ॥ बले अवाधा बडी नीतरी । खम-
 णी न आवै छे तामजी । तिणसुं पूंजे छे जांय-
 गां जोयने, ते समाई तणुं नहीं कामजी ॥
 ॥ शि ॥ ४२ ॥ मांखी माछर कीडी आदि दे । ते
 तो लागे छे शरीरी आयजी । ते खमणी न आवै
 तेहरी । तिणसुं पूंज परहा करै तहायजी ॥
 ॥ शि ॥ ४३ ॥ जो कायास्थिर राखै येक आश-
 रण । तिणरे पूंजणीरो काई कामजी ॥ परिशह खम-
 णी नहीं आवै तेहमें । पूंजणी राखीछे तामजी
 ॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनीकह्यां समझ पडै नहीं ।
 तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा बाहर
 धर्म भुजने । नहीं करणी एहवी अनीतजी ॥
 ॥ शि ॥ ४५ ॥ सर्वर उपपन्न जावता । कियां
 मांखी माछर व्यापारजी ॥ जे मर्यादुं निखय कर्तव्य

लारा किया पच खाणजी ॥ खेत्र थी सर्व क्षेत्र
 मभै । काल थी मऊस्त एक जाणजी ॥ शि
 ॥ ३३ ॥ भाव यकी राग द्वेष रहित छै । जब
 संबर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीतै समाई
 ओलखी करै । जब सामाईक हुवै तायजी ॥
 शि ॥ ३४ ॥ अवशर सघला नें त्याग दिया ।
 त्यांसू करै संभोगजी ॥ तिणसूं भांगै समाई व्र-
 त तेहनूं । इणरा बर्त्त्या छै सावद्य जोगजी ॥
 शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई में सामाई तणूं । का-
 रज करणू राख्यो छै आगार जी ॥ तिणरो कार्य
 क्रियां समाई भांगै नहीं । तिणरो पिण करै विचा-
 रजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई में मांहो मांहि कार-
 ज करै । तैतो सूत्रमें नहीं छै तायजी ॥ ते निश्चय
 थापणी आवै नहीं । ज्ञानी वदे ते सत्य बायजी
 ॥ शि ॥ ३७ ॥ केई कहें समाई में राखी पूंजणी
 । राखीते दयारै कामजी ॥ तिणरो जवाब सूण
 विवर सुद्धे । चित राखी एकंत ठामजी ॥ शि
 ॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजै समाई मभै । मात्रादि
 परैठै पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नहीं ।
 तिणमें धर्म कहै ते अचूभजी ॥ शि ॥ ३९ ॥

शरीर पूंजै परठै मांजो । ए शरीरादिकरा छै काजजी ॥
 जो धर्म तणु कारज हुवे । तो आज्ञा देवै जिन
 राजजी ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणुं परठणुं करै न-
 ही । कायस्थिर राखै येक ठामजी ॥ हस्तादिक
 बिना हलावियां । रहणी नहीं आवै छै तामजी ॥
 ॥ शि ॥ ४१ ॥ बले अबाधा बडी नीतरी । खम-
 णी न आवै छै तामजी । तिणसुं पूंजै छै जांय-
 गां जोयनें, ते समाई तणुं नहीं कामजी ॥
 ॥ शि ॥ ४२ ॥ मांखी माछर कीडी आदि दे । ते
 तो लागै छै शरीरै आयजी । ते खमणी न आवै
 तेहरी । तिणसुं पूंज परहा करै तहायजी ॥
 ॥ शि ॥ ४३ ॥ जो कायास्थिर राखै येक आश-
 र्य । तिणरे पूंजणीरो कांई कामजी ॥ परिशह खम-
 णी नहीं आवै तेहसें । पूंजणी राखी छै तामजी
 ॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनी कल्यां समझ पडै नहीं ।
 तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा बाहर
 धर्म श्रद्धेन । नही करणी एहवी अनीतजी ॥
 ॥ शि ॥ ४५ ॥ शरीर उपग्रारा जावता । कियां
 सावध जोग व्यापारजी ॥ जे शरीरसुं निरवध कर्तव्य

कैर तिणै जिन आज्ञा दे श्रीकारजी ॥ शि ॥

॥ ४६ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सामाईक में जो उपग्रण रखा है सो प्रथम करण परिभोग-
ने को रखा है वो दूसरे को कैमे भोगावै दूसरे को भोगानेका
तो त्याग है इस लिए सामायिक पचखते समय कहता है द्रव्य
थकी तो जो कने रखा सो द्रव्य उपरान्त त्याग, क्षेत्र थकी सर्व
क्षेत्रों में एह त्याग है अर्थात् किमी जगें भी आगार नहीं,
काल थकी एक महरत लग, भावथी राग द्वेष रहिन है तब संवर
निरजरा मयी गुण निपजता है, इस तरहें सामायिक को पह-
चान के सामायिक करणें से सामायिक होती है, त्यागे हुएसे
संभोग करने से सामायिक व्रत भंग होता है इसवास्ते जो कार्य
आगार नहीं रखा है उन्हें नहीं करना चाहिए, कितनेक सामा-
ईक में सामाईक वालका कार्य करना आगार रखके कार्य कर-
ते हैं तो उनकी सामायिक नहीं भागती है परंतु उसकाभी प्रमा-
ण करना अवश्य है, सामायिक में दूसरे सामायिक वाले का
कार्य करना आगार रखे सो सूत्रों में नहीं कहा है इससे इस
बोलकी स्थाप नहीं की जाती इससे निश्चय ज्ञानी कहै सो
सत्य है, कोई कहै दया पालने के निमित्त समाई में पूजनी रखते
हैं सो पूजनी रखने में धर्म है ऐसी कहै जिसका जवाब
यह है कि पूजनी रखते हैं सो अमृत में है अपना शरीर स्थिर
नहीं रहमक्ता चंचलता के कारण हाथ पग हलाता है तथा
एक जगेंसे दूसरी जगें अंधेरे में जाता आता है वा मरुखी मच्छर

आदि शरीर पै बैठते हैं तो उनको जयगांसे पूजना कीठी कुंथु-
वादि जीवों की अनुकम्पा लाक उन्हें नहीं मारना एह जा
दया भाव है सो निरवध है किन्तु पूजणी रखी सो निरवधजोग
नहीं है भवताश्रव है सावध योग जिन आज्ञा वाहर है, मक्खी
मच्छर आदि शरीर के चटके देंवो परिशह खपना परंतु खपे
नहीं जाते तब पूजणी से उन्हें दूर करता है यह तो प्रत्यक्ष
भपनी कचाई है जो भपनी काया येक आशन स्थिर रखे तो
पूजणी की क्या जरूरत है इस लिए पूजणी रखता है सो
शरीर के काम आती है लेकिन साभाविक के काम नहीं आती
इस लिए सावध जोग हैं स्वामी श्रीभीखनजी कहते हैं कि इतनी
कहें भी समझ नहीं पड़े तो श्रीजिनेश्वरों की प्रतीत रखना
चाहिए समझना चाहिए कि जिस कार्यकी जिन आज्ञा है सो
कार्य करते कराते अनु मोदते धर्म है ओर जिसकार्य की जिन
आज्ञा नहीं है उसे करते कराते अनु मोदते धर्म नहीं है
॥ इति ॥

॥ अथ दशमं देशावगासी व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

दशमं देशावगासी व्रत छै । तिणारा भेद अ-
नेक ॥ थोडासा प्रगट करूं । ते सुणजो आण
विवेक ॥ १ ॥

॥ ढाल मम करो काया माया कारमी ॥

॥ एदेशी ॥

देशावगासी व्रतनां । भांगा हुवै विविध
 दोयजी ॥ पहलो छै छट्टा नीपरे । दूजो सातमां
 ज्युं होयजी ॥ सिखाजी व्रत आराधिये ॥ १ ॥
 दिन प्रते प्रभात थी । छहुं दिशिरो कियो प्रमाण
 जी ॥ मर्यादां कीधी तिण बारली । पांचूं हीं
 आश्रवनां पचखाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जे भूमिका
 राखी छै मोकली । तिण मांहि द्रव्यादिक्नों
 व्यापारजी ॥ मर्यादां सक्ति सारू करै । भोगा-
 दिक करै परिहारजी ॥ सि ॥ ३ ॥ कालथी दि-
 वशनें रातनूं । भावथी विवध प्रकारजी ॥ करण
 जोग घालै तेतला । जेतला करै परिहारजी ॥
 सि ॥ ४ ॥ बलि जघन्य नवकारसी आदिदे ।
 उत्कृष्टो घालै काल कोयजी ॥ मर्यादां सूं त्यागै
 सावज्भ भणीं । जिम करै तिम होयजी ॥ सि ॥
 ॥ ५ ॥ कोई करै छै त्याग हिन्सा तणु । तिण
 में कालरो करै प्रमाणजी ॥ ते त्याग पूरा हुवां
 तेहनें । आगै तो नहिं पचखाणजी ॥ सि ॥ ६ ॥

हिन्सा झूठ चोरी मैथुन नू । वलि पांचमूं परि-
 ग्रह जाणजी ॥ एह पांचूं हीं श्राश्रव द्वाखुं ।
 काल घालिनें करै पचखाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥
 प्रमाण करै छब्बीस बोलनूं । पंदरा कर्मादान
 तणूं प्रमाणजी ॥ वलि सचितादि चवदह निय-
 मनूं । यांरा नित्य नित्य करै पचखाणजी ॥ सि ॥
 ॥ ८ ॥ नवकारसी पोहरसी पुरमुद । येकाश-
 णीं आंबलादिक तासजी ॥ उपवास बेलादिक
 तप करै । उत्कृष्टो करै छमासजी ॥ सि ॥ ९ ॥
 तपतणूं कष्ट हूवै तिको । ते करणी निरजरा तणीं
 जाणजी ॥ खावा पीवारी ब्रत हुयो तिका । ते
 दशमूं ब्रत हुअै आणजी ॥ सि ॥ १० ॥ जे जे
 सावध त्यागै तेहमें । कालरो करै प्रमाणजी ॥
 तेह दशमूं ब्रत नीपजै । इणमें जावजीवरा नहीं
 पचखाणजी ॥ सि ॥ ११ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब दशमं देशावकासी ब्रत कहते हैं—अर्थात् कालका
 प्रमाण करिके त्याग करै वो दशमं ब्रत है यह दो भांगोंमें होता

है प्रथमां भांगै तो छटाव्रत सम, और द्वितीया भांगै सातमांव्रत सम है, जिसका भेद विवध प्रकार से जानना जिसमें इहां सत्ते-पमात्रसे वर्णन करते हैं द्रव्यतः दिवश प्रते प्रभात से छट्ठिदि-शोंका प्रमाण करके मर्यादा उपरान्त पांच आश्रवद्वार सेने से-वानेका पचखाण करना, जितनी भूमी रखी उसमें भी यथा शक्ति द्रव्यादिक की मर्यादा उपरान्त विषय भोगादि का त्याग, कालथकी दिवश रात्रि प्रमाण, रागद्वेष रहित उपयोग सहित अनेक प्रकार अर्थात् इच्छा प्रमाण करण योग से, और गुण-थकी संवर निरजरा; पुनः जघन्य नवकारसी अर्थात् येक महूर-त तक और उत्कृष्ट जितना काल तक करै उतनाही कालतक सावध जोगोंके त्याग और हिंसादि पंच आश्रवद्वारके त्याग जैसे जैसे करै उसही तरह से दशमाव्रत होता है यह प्रथम भांगा कह या; दूसरे उल्लिखित विहं आदि छवीस बोल, इंगालिक कर्म आदि पंदरह कर्मादान, और सचितादि चवदह नियम का मर्यादा उपरान्त जितने कालतक के त्याग करै सो दशमांव्रत है, नवकारसी पहोरसी पुरमुढ अर्थात् डेड पांहरसी, येकाशणां उपवास बेंलातेंला आदि छमासी तप आवश्यक करै सो दशमा व्रत है, तप करतें कष्ट सहन करै जिससे निरजरा होती है और सावध जोगोंके त्यागने से आवश्यकके संवर होता है सो दशमां व्रत संवर है, तात्पर्य इसमें जावउजीवके पचखाण नहीं हैं, कालकी मर्याद रखके जो जो त्याग किये सो व्रत है आगार गवखा उसे सेता सेवाता और अनुमोदता है सो अव्रत है जिससे पाप कर्मोपार्जन होता है ।

॥ अथः इज्ञारमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

श्रावकरो व्रत ज्ञारमूं । पोषध कह्यो भगवान् ॥
सिखा व्रत रलियामणों । हिंवै सुणूं सुरत दे
कान ॥ १ ॥

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

हिंवै पोषध व्रत रलियामणूं । पचखै चिहुं
विधि आहारजी ॥ अवम्भ मणी सुवण तजै ।
माला वणग विलेवण परि हारजी ॥ सिखाजी
व्रत आराधि ए ॥१॥ सस्थ मृशलादिक आदि
दे । सावज्भ जोग तणां पचखाणजी ॥ कालथी
दिवशनें रातनूं । एक पोसा तणूं प्रमाणजी ॥
सि ॥ २ ॥ जघन्य दोय करण तीन जोगसूं ।
कैर सावज्भ जोग पचखाणजी ॥ कोई उत्कृष्ट
भागै कैर । तीन करण तीन जोगरों जाणजी ॥
सि ॥ ३ ॥ द्रव्यथी कनें तिण उपरांतरा । किया
सर्व द्रवांरा पचखाणजी ॥ खेत्रथी सर्व क्षेत्रां मभै ।
कालथी दिवशनें रात्रिरा जाणजी ॥ सि ॥ ४ ॥
भावथी रागद्वेष रहित कैर । बलि चोखै चित उप-

योग सहितजी ॥ जब कर्म रुकै छै आवता ।
 वलि निरजरा हुवै रुढी रीतजी ॥ सि ॥ ५ ॥
 उपग्रण पोसामें राखीया । तिण उपरांत क्रिया
 पचखाणजी ॥ राख्या ते अव्रत परिभोगरी । तिणरो
 पाप निरंतर लागै छै आणजी ॥ सि ॥ ६ ॥
 पोसानें सामाइक व्रतनां । सरिपां छै पचखाणजी ॥
 सामाइक तो महरत येकनीं । पोषो दिवश रातरो
 जाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ पोषानें सामाइक व्रतमें ।
 यां दोयां में सरिषो छै आगारजी ॥ ते कह्या छै
 सघलाही अव्रत महीं । ते जोयकरो निस्तारजी ॥
 सि ॥ ८ ॥ जब कोई कहै पोषध व्रतमें । मणी
 सुब्रणादि पचखाणजी ॥ तिणसूं मणी सुब्रणा-
 दि कनें राखीयां । पोषो भाग गयो जाणजी ॥
 सि ॥ ९ ॥ पोसा मांहि कनें राखीया । मणी
 सुब्रणांदिक जाणजी ॥ तिण उपरांत राखणरा
 पचखाण छै । तसुं उत्तर यह पिछाणजी ॥ सि ॥
 ॥ १० ॥ उमुक कहितां मूंकी दिया । त्यां मणी
 सुब्रणरा पचखाणजी ॥ कनें रह्या त्यांरी अव्रत
 रही । भगवती सूं करिजो पिछाणजी ॥ सि ॥ ११ ॥
 जो मणी सुब्रणरा जावक पचखाण हुवै । तो उ-

मुकरो पाठ कहता नांहिजी ॥ ओतो निर्णय उ-
 घाहो दीसी गयो । विचार देखो मन मांहिजी ॥
 सि ॥ १२ ॥ श्रेणिकने कृष्णजी री राणियां ।
 इत्यादिक राणियां अनेकजी ॥ त्यां पोषा किया
 दिसै गहणां थकां । समजो आंणि विवेकजी ॥
 सि ॥ १३ ॥ त्यां री चूड्यां में हीरा पन्ना जड्या ।
 वले दांतां में जाणिजे मेखजी ॥ और गहणां
 त्यां री पहरणों । त्यां उतारखा न दीसै छै येकजी ॥
 सि ॥ १४ ॥ भारी २ जुहार चूड्यां जड्या । वलि
 भारी २ गहणां हात गला मांहिजी ॥ तैं सघ-
 लाही केम उतारसी । योतौ मिलतो न दीसै छै
 न्यायजी ॥ सि ॥ १५ ॥ त्यां कीधी समाई सँदया
 कालरी । समाई कीधी रात प्रभातजी ॥ ते खि-
 ण २में केम उतारसी । या पिण मिलती न दीसै
 बातजी ॥ सि ॥ १६ ॥ समाई में गहणां नहिं
 राखणां । तो चूड्यां नहीं राखणी त्हायजी ॥ गह-
 णांने चूड्यां तो येकहीजछे । दोनूं हीं आभूषण
 म्हायजी ॥ सि ॥ १७ ॥ समाई नें पोसा तरणी ।
 दोयां री विधि जाणिजो येकजी ॥ रीत दोयां री
 वरोवरी । समजो आंणि विवेकजी ॥ सि ॥ १८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब इहारमां पोषध अर्थात् धर्म पुष्टी रूप व्रत कहते हैं जिसमें इस माफिक त्याग होते हैं ।

१ असाण (आहार) पांण (पांणी) स्वादिम (मेवादिक) स्वादिम (पान सुपारी लवंगादि) के त्याग ।

२ अवस्म अर्थात् अब्रह्मचर्य ते मैथुन के त्याग ।

३ उमक मणीं सुव्रण अर्थात् रतनादिक वा सुव्रणादिक वोसाराये हुए के त्याग ।

४ माला अर्थात् पुष्पमाला फूल आदि के त्याग ।

५ वणग अर्थात् गुलाल अंबीर रङ्ग आदि के त्याग ।

६ विलेपन अर्थात् केशर चन्दन आदि का विलेपन करने का त्याग ।

७ सस्थ मृशलादि सावज्ज्म जाग अर्थात् शस्त्र मृशल आदि सावध जाग बर्तने का त्याग ।

उपरोक्त सात प्रकारके त्याग किये जाते हैं सो खेत्र थी सर्व खेत्रों में, कालथी अहोरात्री प्रमाण, दोष करण तीन जागों से वा तीन करण तीन जागों से, भावथी राग द्वेष रहित गुणथी संवर निरजरा, इसप्रकार अपने पास में ज्यो बस्त्र वा गहणा आदि द्रव्य पोसा पचखते वक्त रक्खा है उन द्रव्यों उपरांत सावध जाग सेना सेवाना का त्याग होता है, जो उपग्रण कते रक्खे वा अव्रत में है जिससे परिभोग की अव्रत पोसा में निरंतर लगती है, पोसा और सामाईक के आगार येकसा है आगार उपरांत त्याग किये सो सामाईक का नवमा व्रत येक

भारत का है और पोसा इज़ारमां व्रत रात्रि दिन का है, जब कोई ऐसा कहै कि पोसा भङ्गीकार करता है तब सुव्रणादि तथा मणीरतनादि का पचखाण करता है इसलिये पोसा में गहना नहीं रखना चाहिये जिसका जवाब यह है कि पोषध व्रत में उमक मणी सुव्रण के त्याग है अर्थात् मूँके हुये मणी सुव्रण रखणे के त्याग है अपने पास में गहना पहना हुआ है वो तो भागार है इसवास्ते त्याग भंग नहीं होता, भागले जमाने में भी कृष्ण जी और श्रेणिक राजा की राणियों ने पोषध किये हैं उनकी चूडियों में तथा आभूषणों में अनेक बहु मूल्य रतन जड़े हुये थे परंतु चूडियां उतारकर पोषध किया ऐसा अधिकार कहीं भी सूत्रों में आया नहीं तथा सामाईक व्रतकरते वक्त भी पहने हुये आभूषणों का भागार है सो अव्रत आश्रव द्वार है परंतु त्यागों का भङ्ग नहीं होता यदि आभूषण रखणे से सामाईक और पोषध व्रतका भङ्ग होय तो फिर किञ्चित मात्र भी सुव्रण अथवा रतन जड़ित आभूषण नहीं रखना चाहिए स्त्री जाति के सामाईक और पोषध में चूडियां तो अवश्य ही रहती है, किसी स्त्रीने संध्या समय वा अर्द्ध रात्री समय सामाईक करी तो बेर बेर में चूडियां कैसे खोलेगी चूडियां खोल के सामाईक करे ये न्याय तो मिलता नहीं इसलिये स्पष्ट ही मालूम होगया कि मणी सुव्रणादिका सर्वथा प्रकार त्याग नहीं है और जो सामाईक की विधी है वोही पोषध की विधी है।

॥ ढाल तेहिज ॥

यह लोकरै अर्थ करै नहीं । न करै खावा पांवारे हैतजी ॥ लोभ लालच हेतु करै नहीं ।

परलोक हेत न करै तेथजी ॥ सि ॥ १९ ॥ संवर
निरजरा हेतै करै । और बंछा नहिं कांयजी ॥
इण परिणामां पोसो करै । ते भावयकी शुद्ध था-
यजी ॥ सि ॥ २० ॥ कोई लाडूआं साटै पोसो
करै । कोई परिग्रहो लेवा करै तामजी ॥ कोई
और द्रव्य लेवा पोसो करै । ते कहवा नें पोसो
छै नामजी ॥ सि ॥ २१ ॥ तै तो अरथी छै एका-
न्त पेटरो । ते मजूरी या तणी छै पांतजी ॥ त्यांरा
जीवरो कारज सैर नहीं । उलटी घाली गला
मांहि रांतजी ॥ सि ॥ २२ ॥ लाडूआं साटै पोसा
करावसी । अथवा धन देई तामजी ॥ ते कहि-
वानें पोसो करावियो । पिण संवर निरजरा नूं
नहीं कामजी ॥ सि ॥ २३ ॥ कर्म काटण करै
मजूरीया । त्यांरा घट मांहि घोर अज्ञानजी ॥
लाडूखवाय पोसा करावणां । ये तो कठै हो न कछो
भगवानजी ॥ सि ॥ २४ ॥ कर्म काटण करै
मजूरीया । त्यांरा घट मांहि घोर अंधारजी ॥
पईसा देई नें पोसा करावणां । ते नहिं चाल्या सूत्र
मंभारजी ॥ सि ॥ २५ ॥ मजूरीया करै खेती
निदाणवा । मजूरीया करै घर करावा कामजी ॥

कड़व काटण कौर मजूरीया । कर्म काटण नहिं
 चाल्या तामजी ॥ सि ॥ २६ ॥ खेत खडवा नें
 चाल्या मजूरीया । बलि भार लेजावण कांमजी ॥
 धान खांडण कौर मजूरीया । कर्म काटण नें नहिं
 चाल्या तामजी ॥ सि ॥ २७ ॥ विर्क्त होय काम
 भोगथी । त्यांनैं त्याग्या छै शुद्ध प्रणामजी ॥
 सुक्तिरै हेतु पोसो कौर । ते असल पोसो कह्यो
 स्वामजी ॥ सि ॥ २८ ॥ इण विधि पोसो कियां
 यकां । सीभसी आतम कार्यजी ॥ कर्म रुकसी
 नें बलि टूटसी । इस भाषियो श्री जिनरायजी ॥
 सि ॥ २९ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

पोषध यह लोक के लिये परलोक के लिये अर्थात् परलो-
 क में सुखों की वांछा निमित्त और खाने पीने के लिये तथा
 किसी प्रकार का लाभ लालच के निमित्त नहीं करना चाहिये,
 येकान्त संवर निरजरा के निमित्त पोषध व्रत करने से भाव
 पोसा जाता है। यदि किसीने लाडू खाने के या पारिग्रह लेने के
 निमित्त या कोई वस्तु बेने के निमित्त पोषध किया तो वो
 सिर्फ नाम मात्र पोसा है, लाडू खाने के निमित्त पोसा किया
 तो तो पेटार्थी है उन्हें मजदूरों की पंक्ति में जानना उनका
 कार्य सिद्ध नहीं होता है उन्हीं के तो अशुभ कर्म का बंध होता

है, इसही तरह किसीने लाड़ खवाके या धन देके पोसा कराया तो वो नाम मात्र पोसा कराया जानना ऐसे पोसा कराने से संवर निरजरा कदापि नहीं होता है और दूसरों का माल लाड़ आदि मिष्टान खाके जो मजदूर पोसा करते हैं उनके हृदय में घोर अज्ञान है क्यों के उन्होंने तो सिर्फ खाने के निमित्त पोसा किया है वो लोग यह नहीं जानते कि पोसा क्या है और कैसे होता है, कर्म काटणे के निमित्त मजदूरों से पोसा कराना और करना ऐसा कहीं भी भगवान ने नहीं कहा है पैसा देके मजदूरों से पोसा कराना और पैसा लेके पोसा करना ऐसा अधिकार किसी भी सूत्र में नहीं है परन्तु भोले लोक कुगुरुओंके उपदेश से जिमां के या पैसा देके पोसा कराते हैं वो अपनी मान बड़ाई और जसो कीर्ती के कामी है, खिलाने से और धन देने से धर्म कदापि नहीं होता है यदि ऐसे पोसा हां ता चौथे आरे में तो धनाढ्य श्रावक बहोत थे किन्तु किसी ने भी इस तरह मजदूरों से पोसा कराया नहीं, और जो श्रावक है वा तो इस तरह पोसा करता कराता नहीं, कर्म काटणे के मजदूर तो कहीं सुने नहीं, असबत्तां खेती करने को निन्ना-ण करणे को बोझ भार उठाणे को कडव काटणे आदि कार्य करणे को तो मजदूर हैं परन्तु कर्म काटणे के मजदूर तो नहीं होते येतो मयत्त दिकलाई है, इस तरह पोसा नहीं होता है, होता है सिर्फ वैराग्य भाव लाक काय भोगों से विरक्त होने से और यथार्थ श्रद्धावंत होने से तब ही आत्म कार्य की सिद्धि होती है, श्रावक के पोसा करने से आवते कर्म रुकते हैं और अशुभ कर्म क्षय होके जीव निरमल होता है उसही का नाम पोसा है बाकी लोभ लालच के निमित्त पोसा करने कराने से

धर्म कदापि नहीं होता है, तात्पर्य पौषध लेते वंक्त जो जो सावध जोगों के त्याग किया है वो इझारमा व्रत है सोही आ-
धक धर्म है और जो जो भागार रक्खा है वो अम्रत आश्रव
है अम्रत सेने सेवाने और अनुमोदने में एकान्त पाप है ॥ इति ॥

॥ अथ द्वादशम् अतिथि संविभाग व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

अतिथि संविभाग चौथो शिखा । ते बारम्
व्रत रसाल ॥ श्रमण निग्रंथ अणगार नैं । दान
देवै दग चाल ॥ १ ॥ ते फासु अचितनें सूक्तो ।
कल्पै ते द्रव्य अनेक ॥ कल्पै ते खेत कालमें
दान दे आंणि विवेक ॥ २ ॥ जो उदान दे
सुक्ति नैं कारणों । और बंछा नहिं कांय ॥ जब
निपजे व्रत बारम् । इम भाष्यो जिनराय ॥ ३ ॥
इझारा व्रत बस आपरै । मन मानें जब निपजाय ॥
बारम् व्रत शुद्ध साधुनैं । प्रति लाभ्यां सें थाय ॥
॥ ४ ॥ लाखां कोडां खरचिया । जीव अनन्ती
बार ॥ पिण दान सुपात्र दोहिलो । ते जीव
तर्णो आधार ॥ ५ ॥ ए व्रत निपावा कारणों ।
उद्यम करै नित नेम ॥ भावै साधांरी भावना ।

हाथें दान देवा खुं पेम ॥ ६ ॥ आलस छोड़णूं
किंण विधै । किंण विध देणूं दान ॥ उद्यम कर-
णों किंण विधै । ते सुणों सूरत दे कांन ॥७॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा शिखाव्रत क्या है और कैसे होता है सो कहते हैं । इस-
का नाम अतिथि संविभाग है अर्थात् अतिथिको संविभाग देना
परंतु वां अतिथि कैसे होना चाहिए कि जिन्होंको देनेसे वार-
मा व्रत निष्पन्न हो सो कहते हैं, “समण निग्रंथ अणगार नें
दान देवै दगचाल अर्थात् श्रमण तप संयम में श्रम करें, ग्रंथ
कहिए पणिग्रह ते धन धान्यादि नहिं रखने वाले, और अण-
गार कहिए घर रहित, ऐसे साधू महात्माओंको प्राशुक अचि-
त निरदोष आहार पानी कामभोगों की अभिलाषा रहित
एकान्त युक्तकी आत्मासे देने से श्रावक के वारमाव्रत निपज
ता है ! इज्ञाराव्रत निपजाना तो अपनी हातकी बात है जो चाहे
जब निपजा सक्ता है परंतु वारमाव्रत तो शुद्ध साधू मुनिराजका
संयोग मिलनेसे और आहार पानी आदिकी शुद्ध जागवाई होने
से होता है, लाखों क्रोड़ों का खर्च और संसारिक दानतो यह
जीव अनन्ती बार किया है परंतु सुपात्र दान देना महा दुर्लभ
है सुपात्र दान सेंही वारमाव्रत होता है इसलीये श्रावकको
इस व्रत निपजाने का उद्यम करना अत्यावश्यक है हमेशा मुनि
राजों की भावना दिलमें रखना और शुद्ध योगवाई मिलनेसे
स्वहस्त द्वारा दान देना श्रावकोंका कर्त्तव्य है; आलस्य तज-
के किस प्रकार दान देणा और इसका उद्यम कैसे करना सो-
कहत हैं ।

॥ ढाल जीव मोह अनु कम्पान आंगिये ॥

॥ एदेशी ॥

वारमूं व्रत छै श्रावक तणूं । तिणारो सांभल
जो बिस्तारजी ॥ समण निग्रन्थ अणगारने ।
देवो चिहूं विध शुद्ध आहारजी ॥ इम व्रत निप
जावै वारमूं ॥ १ ॥ बले बस्त्र पात्र ने काम्बलो ।
पाय पूछणूं देवै एमजी ॥ पीढ फलग सेक्का ने
सांथारो । देवै औषध भेषध जेमजी ॥ इम ॥ २ ॥
इत्यादिक वस्तु कल्पै तिका । साधां ने दीधां ह-
र्षित होयजी ॥ जाणै धन दीहाडो धन घडी ।
वारमूं व्रत नीपनूं मोयजी ॥ इम ॥ ३ ॥ करैचि-
न्तवनां साधां तणीं । घरमै देखै शुद्ध आहारजी ॥
बलि भांणै बैठ भावै भावनां । व्रत धारीरो यो
आचारजी ॥ इम ॥ ४ ॥ साधू आय ऊभा देखै
आंगणै । विकसै सघली रोमरायजी ॥ अशणां
दिक देवै भावसूं । घणूं मन रलियायत थाय
जी ॥ इम ॥ ५ ॥ काचा पांणी सूं थाली
धौवै नहीं । बले शचित न राखै पासजी ॥
संघटै नहिं वैसै साचितरै । व्रत निपजावणारो हु-

छासजी ॥ इम ॥ ६ ॥ कांई कांम पड़े आय स-
 चित्तरो । जब खिण समता रखै विख्यातजी ॥
 दिश अवलोक्यां विण साधुरी । नहिं घालै सचि-
 त में हात जी ॥ इम ॥ ७ ॥ कल्पै ते वस्तु पड़ी
 असूभती । कदे सहजै सूभती होय जी ॥ तो
 खप करि रखै सूभती । सचित ऊपर न मेलै को
 यजी ॥ इम ॥ ८ ॥ जे जे द्रव्य जाणै छै सूभ-
 ता । कल्पै ते साधूनें जाणजी ॥ तिणरी भावै नि-
 स्तर भावनां । यहवा श्रावक चतुर सुजाणजी ॥
 इम ॥ ९ ॥ चित्त वित्त पात्र तीनूं तणुं । कदे
 आय मिलै संजोगजी ॥ जब अडलक दान दे
 हात सूं । पछै न करै पिछतावो सोगजी ॥ इम
 ॥ १० ॥ जे जे व्रत धारी श्रावक हुवै । ते जीम
 तां न जडै किमाड जी ॥ उववाई ने सुयगडा श्रं-
 ग में । त्यांरा चाल्या उघाडा द्वारजी ॥ इम ॥ ११ ॥
 सहिभै उघाडा हुवै बारणां । जब रखै उघाड
 तांमजी ॥ नहिं जडै उघाडा बारणां । साधां ने
 दांन देवा कांमजी ॥ इम ॥ १२ ॥ और भेष उ-
 घाड भांहि धसै । साधून आवै खोल किंवार जी ।
 तिण सूं व्रत धारी श्रावक हुवै । ते तो रखै उघा-

हा द्वारजी ॥ इम ॥ १३ ॥ सहजें आया छै घर
आंपणें । नीपनूं देखि शुद्ध आहार जी ॥ जब
काल जाणें गौवरी तणूं । तो वो बाट जोवै तिण
वारजी ॥ इम ॥ १४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

बारवांशत आवक का है वो कसैं निपजता है सो कहने
है:-अमण निग्रय भणगार को असाण १ पाण २ खादिम ३
स्थादिम ४ वस्त्र ५ पात्र ६ काम्बला ७ पद पूछणां ८ पीठ ९
फलण १० सेज्जा ११ संघारो १२ औषध १३ भोजन १४ इत्या
दिक कल्पतीवस्तु अर्थात् जो साधू को लेने जोग दोषराहित हो
सो देने सैं बारमां व्रत निपजता है, उपरोक्त प्राशुक वस्तुओं
को देके आवक अत्यंत हर्षाय मान होय, विचारै कि आजका
दिन और घटी धन्य है ऐसे सत्पुरुषों की योगवाई मिलने सैं
मेरे बारमां व्रत हुआ, तथा जब अपने घरमें सुभता असनांदि
देखै तब अथवा जीपते वक्त साधू मुनिराज की भावनां भावै
आहार पानी आदि जो जो वस्तु साधुओं को कल्पती है उन्हें
सुभती देखैं तब विचार करै कि इस वक्त यदि मुनिराजों का
योग मिलै तो स्वहस्त सैं दानदं तब मनका मनोग्य फलै, जी-
मनें को बैठै तो येक दम मुख में नघालै साधुओं की राइ देखैं,
जीपते समय सचित पानी सैं घाली न धोवैं सचितका संघटा-
नरखैं कदा इसरी वक्त साधू पधार जाय तो हर्ष सहित व्रत
निपजावै, साधुओं को वस्तु कल्पै सौ असुभती पडी होय तो
सो साधुओं के लिये सुभती न करै यदि स्वतः ही सुभती हो

तब उसें सूझती रखें और उन वस्तुओं को साधू को बहराने की भावना निरंतर रखें योग मिलन से अद्वलक दान अर्थात् जितनी चावना साधू को हो वो हर्ष सहित भरपूर दें, और ब्रतधारी श्रावक हों वो जीमते समय द्वारके कपाट न जड़ें उब-बाई सूत्र में श्रावकों के उघाड़े द्वार कहे हैं क्योंकि द्वार बंध होयतो द्वार खोलके साधू अन्दर नहीं आते हैं दूसरे भेष वाले तो द्वार खोल के अन्दर भी आहार लेने को आजाते हैं परंतु साधू मुनीराज तो कपाट खोलते जड़ते नहीं इसलिए श्रावकों के उघाड़ द्वार कहे हैं, यदि बड़ेहुये किवाड़ होतो उन्हें साधु-बों के निमित्त न खोलें अपने कार्य के निमित्त खुलें तब उन्हें न जुड़ें और साधू मुनिराजों की भावना रखें ये ब्रतधारी का आचार है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

ज्यारै हंसघणी छै मांहिली । पोतै स्वहात देवा दानजी ॥ त्यांरा हृदय में साधू बसरह्या । ते किण विध मुंके ध्यानजी ॥ इम ॥ १५ ॥ अशाणांदिक थाली में लीधांपछै । तुरत घालै नहिं मुख म्हांयजी ॥ दिशि अवलोकै भावै भावना । जाणै साधु पधारै आयजी ॥ इम ॥ १६ ॥ इण विधि भावना भावतां थकां । मिलै सतगुरु नीं जोग वाईजी, तोउ दान देउलट परिणामसुं । चूकै नहिं अवसर पाईजी ॥ इम ॥ १७ ॥ सक्ति

सारुदान दे साधुनें । पिण न करे कूडी मनवारजी ।
 गली बादल ज्युं गाजै नहीं । सांचै मन बोलै
 शुद्ध विचारजी ॥ इम ॥ १८ ॥ अढलक दान देई
 साधुनें । पोमावै नहिं श्रीरां पासजी ॥ गिरवो
 गम्भीर रहै सदा । त्यां नें बीर बखारयां तासजी
 ॥ इम ॥ १९ ॥ अढलक दान देणु पातरै । नहिं
 जिण तिणनें आसानजी ॥ दान देवारे ध्यान
 रहै सदा । एहवाविरलाछै बुद्धिवानजी ॥ इम ॥ २० ॥
 आछी वस्तु गोप राखै नहीं । न आणें लोलपणों
 नें लोभजी ॥ गमती वस्तु देवै साधु नें । पिण
 कूडी न साथै सोभजी ॥ इम ॥ २१ ॥ आप खावें
 ते अव्रतमें गिणें । तिणसुं बंधता जाणें पापकर्म
 जी ॥ दान सुपात्रनें दीयां । जाणें संवर निरजर
 धर्मजी ॥ इम ॥ २२ ॥ सुपात्र दान देवे तिण अवशरै ।
 लेखो नकरै मन म्हांयजी ॥ लेखो कियांसुं तो
 लोभ उपजै । अढलक दान दियो नहिं जायजी
 ॥ इम ॥ २३ ॥ लाडू धोवणां दिक बहिरायतां ।
 राखै येक धारा परिणामजी ॥ व्रतधारी आघो
 काँद नहिं । रुही जोगवाइपांमजी ॥ इम ॥ २४ ॥
 कदाबहरियां बिन पाछा फिरै । काँई आय पढ्यां

अंतरायजी ॥ जब पछतावो कियां पुन्य बंधै ।
 बलि कर्म निर्जरा यायजी ॥ इम ॥ २५ ॥ पिछ-
 तावो कियांही पुन्य बंधै । तो बहिरायां हुवै लाभ
 अनन्तजी ॥ उत्कण्ठो तीर्थकर पदलहै । इम भाष
 गया भगवंतजी ॥ इम ॥ २६ ॥ सूक्तती वस्तु न
 करै असूक्तती । तेतो दान देवारै कामजी ॥ असू-
 क्तती नकरै सूक्तती ॥ बहिरावणरा आंणि परिणाम
 जी ॥ इम ॥ २७ ॥ जांणिनें न देवे असूक्ततो ।
 करहो पिण बणियां कामजी ॥ निरदोष दीधी
 वस्तु हातसू । पाछी लेवारी नहिं हामजी ॥ इम ॥
 ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

जिन्होंके मुनिराजको स्वहस्तद्वार दान देनेकी हूंस अर्थात्
 हृषीमत्सावाहै उन्होंके हृदयमें हमेशा साधू बस रहे हैं वोह
 ध्यान उनके चित्तसे कैसे दूर होसकता है उनके तो खाते पीते
 वक्त यही ध्यान रहताहै कि इस वक्त साधू पधार जाय तो
 दान देऊ इसलिए श्रावक जीमते वक्त भायें बैठें तब जसदी
 करके साधूकी भावना भायें बिना मुखमें आहार न घालें राह
 देखने यदि साधू पधार जायतो दान देके असंत खुस हो के
 बिचारें कि आजका दिन धन्यहै सो मेरे बारमां व्रत निष्पन्न
 हुआ, दान देके दूसरों के पास अपनी नारीफ न करै कि मैं
 बड़ा दानेश्वरीहू तथा साधूवोंके पास अपनी सेखी बी न करै

जैसे देनेका भावतो नहीं और कहै कि महाराज मेरे पास आप की करपती वस्तुओं बोलत है जी चाहे सो लीजिए कदा साधूको चाहिये तो लेना स्वीकार करें तब हात धूजने लगजाय ऐसी झूठी मनवार आवश्यकको नहीं करनी चाहिय तथा अच्छी वस्तुको छिपाके सराब वस्तु भी साधूको नहीं धामना चाहिये पर्याप्त अपना लोत्तपी पणां छोडके साधूओंको इच्छित आहार पानी आदि बहिराना सो धारमां प्रतैह, सुपात्रको भटलक दान देना हरेकको आसान नहीं है दिलके मोछे आदमियोंसे या सोभी पूर्ण से सुपात्र दान नहीं दिया जाताह इसलिये आवश्यक को चाहिये कि निरदोष आहार पानी आदि चौदह प्रकारका दान मनकी उत्साह सहित गहर गम्भीर दिल से देवै, उन्हों की ही भगवन्तोंने सराहना की है शास्त्रों में कहाहै शुद्ध दान देनेवाले महादुर्लभ हैं, आवश्यक स्वयं भोजन करे सो भ्रष्ट में जानें जिससे अशुभ कर्मों का बंध और शुद्धसाधू निग्रहको देवै उससे अशुभ कर्मों की निरजरा होके शुभ कर्म जो पुण्यहै सो पंथताह और व्रत संवर धर्म होताहै, तब ही तो आवश्यकके हमेसां वही अभिलाषा रहतीहै कि मैं मुनिराजों को भतिलाभूं सो दिन धन्यहै कदा वस्तु असूझनी होजाय और साधू विना बहरियां ही चलेजाय तब बहोत पश्चाताप करै विचार करै कि देखो मैं कैसा अभागी हूं, पश्चाताप करने से अशुभ कर्मोंका नाश होके पुन्य बंधता है तो साधूओंको बहराने से तां पराफल प्राप्त हाता है उत्कृष्ट भागै तीर्थकर पद पाता है, इसलिये हमेशां भावना रखनी चाहिये लड्डू आदि मिष्ठान तथा घांसण आदि पानी बहराने वक्त येकशा परिणाम रखना चाहिये सूझनीको असूझनी और असूझनी वस्तुको सूझ-

ती करिक कदापि नहीं देना तथा असूक्त वस्तु तो साधूओं को हरगिज किसी भी हालत में नहीं देना क्योंकि असूक्ता देने से तो यकान्त पापही होता है,

॥ ढाल तेहिज ॥

दान देवण देवावण कारणें । कदे अतीक में नहीं कालजी ॥ मच्छर मान बडाई छोड़ने । दान देवै दूषण ढालजी ॥ इम ॥ २६ ॥ आपणी वस्तु कहै पारकी । दान देवा न देवा कांमजी ॥ धर्म ठिकारों भूंट बोलै नहीं । मूँडे कोरी न राखै मांमजी ॥ इम ॥ ३० ॥ इज्ञारे ब्रततो त्याग कियां हुवै । बारमंत्रत दीधां होयजी ॥ तिणसुं कठिन कांम इण ब्रतरो । विरला निपजवै कोयजी ॥ इम ॥ ३१ ॥ सुपात्र दान देवै तेहनें । निपजै तीन बोल अमोलजी ॥ संबर निरजरा हुअै पुन्य बंधै । तयारों अर्थ सुणं दिल खोलजी ॥ ॥ इम ॥ ३२ ॥ जे जे वस्तु बहरायां साधू नैं । तिण द्रव्यरी अब्रत न रही कांयजी ॥ ते ब्रत संबर हुअै इण विधै । शुभ जोगां सें निरजरा थायजी ॥ इम ॥ ३३ ॥ शुभ याग वर्यां हुअै निरजरा । शुभ जोगां सें पुन्य बंध जातजी ॥

पुन्य सहजै हुअै निरंजरा किर्या । जिम खाखलो
हुअै गेहूरी साथजी ॥ इम ॥ ३४ ॥ उत्कष्टै परि-
णामां दान दे । तो उत्कष्टी टलै कर्म छोटजी ॥
उत्कष्टा बंधै पुन्य तेहनै । बलि बंधै तीर्थकर गौ-
तजी ॥ इम ॥ ३५ ॥ जो उणरै पुन्य उदय हुअै
इण भवे । दुःख दारिद्र दूर पुलायजी ॥ ऋद्धि
सम्पदा पामै अति घणी । सुख साता में दिन
जायजी ॥ इम ॥ ३६ ॥ जो उदय न आवै इण
भवे । तो पर भवमें शंका मत जाणजी ॥ ऊंच
गौत्रादिक सुख भोगवै । इण दान तणां फल
जाणजी ॥ इम ॥ ३७ ॥ पुन्यरी बंछा करि देव
नहीं । समदृष्टी साधां नै दानजी ॥ देव संवर
निरजरा कारणे । पुन्यतो सहजे लागै आसा-
नजी ॥ इम ॥ ३८ ॥ अव्रत में देतां यकां ।
पडै श्रावकर मन धरकजी ॥ ज्यानें दान दियां
व्रत नीपजै । त्यानें दीठांही पामै हरखजी ॥ इम ॥
॥ ३९ ॥ काम पडै अव्रत में दानरो । जब दे
तोही सरमां सर्मजी ॥ पछै करै पिछतायो तेहनूं ।
कायिक दीला पडै कर्मजी ॥ इम ॥ ४० ॥ अ-
व्रत में दान दे तेहनूं । टालणरो करै उपायजी ॥

जाणो कर्म बंधे छै म्हांयरे । मोने भोगवतां दुःख
 दायजी ॥ इम ॥ ४१ ॥ अत्रत में दाम देतां
 थकां । बंधे अहंही पाप कर्मजी ॥ सुपात्र ने
 दान दियां थकां । म्हांरै संवर निरजरा धर्मजी ॥
 ॥ इम ॥ ४२ ॥ अत्रतमें दान देवा तण्ण । कोई
 त्याग करै मन शुद्धजी ॥ तिणरो पाप निरंतर
 टालियो । तिणरी वीर वणाणी बुद्धिजी ॥ इम ॥
 ॥ ४३ ॥ कुपात्र दान मोह कर्म उदै । सुपात्र
 दान क्षयोपस्म भावजी ॥ व्रत निपजै सुपात्र दा-
 नथी । तिणरो जाणै समदृष्टी न्यायजी ॥ ४४ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुनः दान देनेकी विधि कहते हैं—प्रत्येक भावे मान बे-
 द्वाइ छांडिके निरदोष दान दे अपनी वस्तुको परायेकी वस्तु
 दान देने या न देने के निमित्त न कहै अर्थात् यह धर्म कार्य
 में झूठ न बोलै, इजारे व्रततो त्याग करने से और वारमां व्रत
 शुद्ध साधू निग्रंथको निरदोष दान देने में होता है इसलिये
 इस व्रतका निपजाना महा सुशिकल है कोई बिस्ले समझदार
 ही निपजा सकता है इस वास्ते इसके निपजाने की विधि
 स्वाभी ने विस्तार पूर्वक कही है सुपात्रदान देने वास्तेको तीन
 बोल निपजते हैं प्रथमतो जो वस्तु साधुको बहराई उसकी अ-
 व्रत मिटगई सो सो व्रत हुआ तब कोई कहै सिर्फ साधुको देने
 से ही अव्रत क्यों मिटी और आवक आदि दूसरे जीवोंको

देने से अन्नत क्यों नहीं मिली । इसका उत्तर यह है कि साधु के सर्वथा प्रकार अन्नत देने सेवाने और अनुपादने का साग है साधु करपती वस्तु भोगें तो उनके अन्न में हैं साधु आहार पानी आदि जिन आहारा प्रमाणकरें तो संयम यात्रा निरवाहनाथ करते हैं जिससे महाव्रतों की पुष्टी और सुक्ति का साधन होता है निरदोष आहार पानी आदि की याचना करिके सबै तो तो तीसरा महाव्रत की आराधना है श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है तथा राग द्वेष वरजके विधि पूर्वक भोगें तो महिम्मा आदि पांच ही महाव्रतों की पुष्टी और आराधना है इस लिये साधुओं को देने से तो श्रावक के वारमां अन्न तंदर होता है और श्रावक आदि ग्रहस्तों को देनेदिनाने और अनुमोदने से अन्नताश्रव है ग्रहस्त आप भोगें तो भी अन्नत है भोगावे और अनुमोदें तो भी अन्नत है उववाई सुगडा अंग आदि सूत्रों में खुलासा कहा है, इस लिये सुपात्र दान देने में अन्नत तो संकर होता है, दूसरे साधु को वहरायें शुभ जोग बतें जिससे अशुभ कर्मों की निरजरा होती है, तीसरे शुभजोग बतने से पुण्य बंध होता है, उत्क्रष्ट भावों से दान देते उत्क्रष्ट भावे तीर्थकर गौत्र बंधता है । इस भव में पुन्योदय हाने से पुन्य बारिद्र दूर होता है । ऋद्धि सम्पदा सुख साता मिलती है, कदा इस भव में पुण्य ददय न होवे तो पर भव में तो अशुभ ऊंच गौत्रादि पुण्य प्रकृतियां उदय होवेहीगी उन पुन्योदय से अशु कर्म भली २ योगवाइयां मिलने से सर्व कर्मों का नाश करिके सिद्ध गति प्राप्ति होती है शुद्ध दान का ऐसा फल है, परंतु पुन्य की वांछा करिके समष्टी दान न दें सिर्फ संकर निरजरा निमित्त दान दें जिसमें पुन्य तो सहज सुभाव

लगते ही हैं जैसे गेहूँ के साथ खाखला होता है वैसे ही निर-
जरा होते वक्त शुभ योग वर्तने से पुण्य होता है, इस लिये
श्रावक के सर्वप्रथम धारी संयती को दान देने से असंत हर्ष
होता है और अव्रत में दान देते मन धडकता है, अव्रत में
दान देता है सो तो लौकिक व्यवहार से या सभी सम से देता
है सावध्य दान से अशुभ कर्मों का बंध जानता है सावध्य कार्य
का पश्चात्ताप करने से कर्म दीप्ते अर्थात् सिधिल पड़ते हैं, कोई
वैरागी श्रावक अव्रत में दान देने का शुद्ध मनसे त्याग करे तो
उसके इस अव्रत का पाप निरंतर टलता है, तात्परः कुपात्र
दान है सो मोह कर्म के उदय से हैं और सुपात्र दान है सो
क्षयोपसम भाव है सुपात्र दान से श्रावक के चारमां व्रत निप-
जता है तथा अशुभ कर्मों की निरजरा होती है इसका न्याय
समदृष्टी ही जानते हैं, इस लिये सुपात्र दान की विधी पुनः
वर्णन करते हैं ।

॥ ढाल तेहिज ॥

सहिजै जागां पडी हुअै सूभती । जब जोवै
साधारी बाटजी ॥ तिणरै कर्म तणीं निरजरा
हुअै । वले बंधे पुन्यरा थाटजी ॥ इम ॥ ४५ ॥
वाट जोवतां साध पधारिया । सेज्झा दान दे ह-
र्षित थायजी ॥ जाणौ धन दिहाडो धन घडी ।
म्हारै साधु उतरिया आयजी ॥ इम ॥ ४६ ॥ से-
ज्या दान देई शुद्ध साधुनै । केई करै प्रति संसा-

रजी ॥ केई बंध पाडै शुद्ध गतितण्ण । तेतो पामें
 भवजल पारजी ॥ इम ॥ ४७ ॥ सिङ्गहा थानक
 दीधां साधुनें । आगै तिरया जीव अनन्तजी ॥
 वलि तिरयाने तिरसी घणां । इम भाषगया भग-
 वंतजी ॥ इम ॥ ४८ ॥ दियां देवायां भलो जा-
 णियां । निरदोष सुपात्र दानजी ॥ व्रत निपजै
 दीधां वस्तु आपरी । इम भाष्यो श्रीभगवानजी ॥
 ॥ इम ॥ ४९ ॥ पुत्र त्रियादिक मा बापरा । परि-
 णाम चढावै विशेषजी ॥ त्यांनें दान देवा सनमुख
 करै । शिखावै शुद्ध विवेकजी ॥ इम ॥ ५० ॥
 पुत्र त्रियादिक मा बापरा । दान देवारा रहै प-
 रिणामजी ॥ त्यांसुं हेत राखै जिन धर्मरो । शुद्ध
 श्रावक तिणरो नांमजी ॥ इम ॥ ५१ ॥ अढलक
 दान देतां देखी औरनें । त्यांरा पाडै नहिं परिणा-
 मजी ॥ कदा देणी न आवै आपसुं । तो करै
 तिणरा गुंण ग्रामजी ॥ इम ॥ ५२ ॥ गुंण सहणी
 न आवै दातासरा । पोतै पिण दियो नहीं जायजी ॥
 ये दोनू अवगुंण दूरा तजै । श्री जिनवर नुं धर्म
 पायजी ॥ इम ॥ ५३ ॥ औराने दान देतां देखनें ।
 कोई बरज पाडै अंतरायजी ॥ तो उत्कृष्टो बांधै

महा मोहणी । एहवो श्रावक न करे अन्यायजी ॥
 ॥ इम ॥ ५२ ॥ केई अन्य तीर्थी जीमें नहीं ।
 त्यांरा ठाकुरनें बिन दीधां भोगजी ॥ नित्य बरे
 रसोई काढिनें । पोषै पुजारादिक लोगजी ॥
 ॥ इम ॥ ५५ ॥ त्यांनें ठीक नहीं त्यांरा देवरी ।
 देव लेवै न लेवै भोगजी ॥ तोही राखै छै त्यांरी
 आस्था । नित बर्त्तावै त्यांरो जोगजी ॥ इम ॥ ५६ ॥
 तो व्रतधारी शुद्ध श्रावक तणूं । धर्मसूं रंग्यो छै
 तन मनजी ॥ ते गुरुनी भावना भायां विनां ।
 सुखमें किम घालै अन्नजी ॥ इम ॥ ५७ ॥ केई
 कांरै गुरु छै अन्य तीर्थी । त्यांरी कर सांचै मन
 ठैलजी ॥ तो साधु पधार्यां आंगणै । त्यांनें
 श्रावक नहीं गिणै सहेलजी ॥ इम ॥ ५८ ॥
 कोई कहै दान घणूं दिदावियो । येतो लेवारे
 कियो उपायजी ॥ एहवा ऊंधा बोलै शुद्धि बुद्धि
 विनां । पिण श्रावक न काढै बायंजी ॥ इम ॥
 ॥ ५९ ॥ दान देवारा परिणाम जेहनां । तेतो
 सुण २ हर्षित पायजी ॥ कहै व्रत निपावारी वि-
 धि । मौनें सतगुरु दीनी बतायजी ॥ इम ॥ ६० ॥
 और व्रत कछा देवल समां । सिखान्रत छै सिखा

लमानजी ॥ त्यांमें सघला सिरै व्रत बारमूं । ति-
 णरी बुद्धिवंत करसी पिछानजी ॥ इम ॥ ६१ ॥
 तिरया तिरै तिरसी घर्णा । इण दान तणें प्रता-
 पजी ॥ तिणमें संका मूल न आंणवी । श्रीजिन
 मुख सुं भाष्यो आपजी ॥ इम ॥ ६२ ॥ सूत्र
 पुराण कुरान में । पात्र दान तणें अधिकारजी ॥
 ते पात्र कृपात्र नें ओलखी । बुद्धिवंत कोढ नि-
 स्तारजी ॥ इम ॥ ६३ ॥ वले कहि २ नें कितरा
 कहूं । इण दानें तणां गुण आमजी ॥ कोढ जि-
 ह्वा करि बरणाव्यां । पूरा कहिणी न आवै ता-
 यजी ॥ इम ॥ ६४ ॥ जोड कीधी बारमां व्रतरी ।
 तेतां गुदवा सहर मंभारजी ॥ सम्बत् अद्धारह व-
 लीसमें । बैशाख शुद्ध बीज मंगलवारजी ॥ इम ॥
 ॥ ६५ ॥ इति ॥ स्वाम भीखनजी सोभता ।
 जोई सूत्रो न्यायजी ॥ भवे जीवांनं प्रति बौधवा
 वरै व्रत दीया ओलखायजी ॥ इम ॥ ६६ ॥
 । इति द्वादश व्रतकी जोड स्वामी श्रीभीखनजी कृत ।

॥ भाषण ॥

अपना मनान सारी होय उस में सचितादि विखर नहीं
 रही होय माधुकहोय तब आचक भावना भावै कि साधू पधारै
 तो ये पर मेका दान देके व्रत निपजाऊं कदा साधू पधारै जा-

यती जायगां देके मन में अत्यंत हर्षित होय विचार करै कि भोज का दिन और भोज की घड़ी धन्य हैं सो मेरे ऐसी योग वाई मिली मेरे यह मकान उपभोग में आताथा या अन्य भ्रम-ती को उपभोग कराताथा जिस से तो पाप लगता था अब सर्व व्रतियों के काम आरहा है सो व्रत निषज रहा है, यह दान देता महा मुस्तिस है इस दान से अनन्त संसारी का प्रति सं-सार हो के शुद्ध गति प्राप्त होती है, सज्जा दान साधुओं को देने से महाकाल में अनन्ते जीव संसारमयी समुद्र से तिरि वर्त-मान में तिरि रहे हैं और यविष्यत् काल में अनन्ते जीव तिरिगे, सुपात्रों को अपनी वस्तु देने से धारमां व्रत होता है दिलाने और अनुमोदने से निरजस धर्म होता है ऐसा जानके पुत्र लि-यां मा वाप आदि परिवार वालों को सुपात्र दान देने की विधौ सिखलाना और दान देने वालों से धर्म को प्रीती रख-ना यह श्रावक का कर्तव्य है इस लिये सुपात्र दान देने वालों से धर्मराम रखना शुद्ध श्रावक उसही का नाम है, जो कदा जपने से न देणी आवैं ता देने वालों का परिणाम स्थिर न करै उनके गुन ग्राम करने से धर्म होता है सुपात्र दान के दा-तार का गुन सहने न करना तथा आप न देना यह दोनू भ-वगुन है श्री जिन धर्म पाके इन्हें तजै और देते हुए को अंत-राय न करै अंतराय देने से महा मोहनीय कर्म बंधता है, देखो कई अन्य तीर्थ भी ऐसे निख नियमी हैं कि ठाकुरजी के भोग लगाये बिना नहीं जीमते हैं अलवचा उनको यह मालुम तो नहीं है कि वो परमेश्वर निरंजन निराकार जोतिष्परूपी अशी-री भोजन करते हैं या नहीं परंतु प्रतीते रखके भक्ति करते हैं

तथा कोई अन्यायमती अपने गुरुकी सेवा सुश्रुषा भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं तो व्रतधारी आवश्यक निरलोभी निरसालची निष्परिग्रही शुद्धसाधू मुनिराजोंकी अश्रणाधि चौखट प्रकार का दान निरदोष देके सेवाभक्ति अवश्य करें, यही उपदेश है, तब कोई कहें अपने लेनेके लिये दानकी प्रशंसा बहोत की है ऐसी जलटी बात निरबुद्धि कहै, किन्तु आवश्यकतो कहै कि हमें सद्-गुरुओं ने दान देने की विधि अनुग्रह करिके बताई है, क्यों-के इज्ञारे व्रततो आवश्यक जी चाहें जब निपजा सकता है परंतु बारमा व्रत सर्व व्रतों में श्रीकार धजा समान है सो तो साधू की यांगवाई मिलनेमें ही होता है शास्त्रों में कहा है “दुलहाउ मुवादाई” अर्थात् शुद्ध दानके दातार दुर्लभ है सूत्रमें पुरानमें कुंग-नेमें सब मतोंमें सुपात्र दानकी प्रशंसा है सुपात्र दान देके अनन्ते जीव तिरै तिर रहे हैं तथा अनन्ते जीव तिरैगे ऐसा जानके सुपात्र कुपात्र की यथार्थ पहिचान करिके सुपात्र दान देना चाहिये; यह बारमा व्रतकी जोड़ स्वामी श्रीभीखनजीनें गुदवा शहरमें सम्बद्ध १८३२ मिति वैशाख सुदी ३ मंगलवार को करी जिसका भावार्थ मैंनें मेरी तुच्छ बुद्धि अनुमार किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो जिस का मुझ त्रिविध २ मिच्छामि दुक्कटं हे ।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्राटक छन्द ॥

यह द्वादश व्रत आखिया जिन आखिया
आगम महीं । तसु दाल बंध सुजोडनीकी स्वाम

श्री भीक्षु कही ॥ तेहनुं भावारथ जांगु लहयो
 कहयो गुलाब श्रावक इमसही । व्रत धारीये दुःख
 दारीये श्रीकालूगणी सुपसायही ॥१॥

आपका हितेच्छु

जोहरी गुलाबचंद लूणीया

जयपुर

॥ अथ ६६ अतिचार ॥

॥ दाहा ॥

बौद्ध अतिचार ज्ञानरा । पांच समकितरा
 जानि ॥ साठ बार व्रतां तणां । पंदरा कर्म्मदान । १।
 सलेपणनां पांच छैं । ये निन्नाणुं अतिचार ॥
 टालै सधला भावसुं । जे पापें भवपार ॥२॥

॥ ढाल ॥

म्हेतो वीर बांदणनें जावस्यां । तथा धर्म दला-
 ली चित करै ॥ एदेसी ॥

अतिचार लागे ज्ञान नैं । ते गिणतां चवदह
 याय हो श्रावक जन ॥ जवाईधं वच्चा मेलियं ।

हीण अक्षर अधिक बोलायहो ॥श्रा॥ अतिचार
 लागि ज्ञानने ॥श्रा॥ १ ॥ पद हीणो विनय हीणो
 करै । जोग हीण घोष हीण थायहो ॥श्रा॥ सुदुष्ट
 दीनं दुष्ट पडिच्छयं । अकालै करै सज्जायहो ॥
 श्रा ॥२॥ काले सज्जाय करै नहीं । असज्जाय
 में करै सज्जायहो ॥श्रा॥ सज्जाय वेलां आलस
 करै । जब ज्ञान थांरो मैलो थायहो ॥ श्रा ॥ ३ ॥
 हिव समकित नां दूषण कहा । पांच मोटा अति-
 चारहो ॥ श्रा ॥ जांखै पिण आदरै नहीं । पालै
 निर अतिचारहो ॥श्रा॥ अतिचार लागि समकित
 भणी ॥४॥ भगवंत भाष्या ते सुणि करै । शंका कंखा
 विदगंछ हो ॥श्रा॥ कुगुरु प्रशंसा जेकरै । गित्थ्या
 संगकरै मन बंछहो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ५ ॥ दूषण
 लागि व्रतांभणी । ते पांच पांच अति चारहो ॥श्रा॥
 जांखै पिण आदरै नहीं । पालै शुद्ध आचारहो
 ॥ श्रा ॥ अ ॥ ६ ॥ जीव बांधै मारै निरदय पणै ।
 करै कानादिक छवी छेदहो ॥श्रा॥ घणूं भार पर
 खेपवै । करै भात पांणीनुं बिछेदहो ॥श्रा॥ अतिचार
 लागि व्रतां भणी ॥ ७ ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणरा
 त्याग है । त्यां त्यां जीवांरा पांच अतिचार हो

॥ श्री ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणरो आगार छै ।
 त्यांनै मारयां नहीं दोष अतिचारहो ॥श्री॥अ ॥
 ॥ ८ ॥ अण विचारयो कूडो आलदे । छानीवात
 प्रकाशै तैहहो ॥ श्री ॥ मर्म भैद कूडी साख दे ।
 कूडा लेखा करै जेह हो ॥ श्री ॥ अतिचार दूजाव्रत
 नै ॥ ९ ॥ जिण २ भूँठ बोलणरा त्याग छै । तिण
 बोल्यां पांच अतिचारहो ॥ श्री ॥ जिण २ भूँठ
 बोलणरो आगारछै । तिण बोल्यां दोष न लिगार
 हो ॥ श्री ॥ अ ॥ १० ॥ चोरी वस्तु ले चोरां साभ
 दे । वलि भांजै राजरो दांण हो ॥श्री॥ कूडातोला
 कु मांपाकरै । भेल सभेल दगो दे जांण हो ॥श्री॥
 अतिचार तीजाव्रतनै ॥११॥ जिण २ भांगै चोरीरा
 त्याग छै ॥ तिण भांगै लागै अतिचार हो ॥ श्री॥
 जिण भांगै चोरी आगारछै । तिणमें व्रत भंग नाहिं
 लिगार हो ॥श्री ॥ १२ ॥ थोडोई काल परिग्रही
 अपरिग्रही थकी । गमन कीयो हुवै चाहिहो ॥श्री॥
 अनेक कीला कीधी तेहसैं । पर विवाह दीनी हुवै
 रायहो ॥ श्री ॥ अतिचार चौथाव्रतनै ॥१३॥ वलि
 कांम भोगरी बन्हा थकां । तीव्र अभिलाषा कीधी
 हुअै त्हाय हो ॥ श्री ॥ ज्यांनै त्यागी त्यांरो सेवन

कीयां । अतिचार कहया जिनराय हो ॥श्रा॥ अ ॥
 ॥१४॥ जिण भांगै चौथोव्रत आदरयो । ते भांगो भां-
 रयां अति चारहो ॥श्रा॥ जे जे भांगा छूटा राखिया ।
 ते सेव्यां नहिं दोष लिगारहो ॥श्रा॥ अ ॥ १५॥ खेत
 बधु हिरण सुव्रण तर्णी । मर्यादां देवै लोपायहो
 ॥श्रा॥ धन धान द्विपद चौपद बधै । कुम्भी धातु अ-
 धिक रखै त्हायहो ॥श्रा॥ अतिचार पांचमां व्रतनें १६
 ऊंची दिशि उलंघै मर्यादधी । नीची तिरछी इम उलं-
 घायहो ॥श्रा॥ येक दिशि दूजीमें मेलबो । दिशि
 संख्याव्रत भंगायहो ॥श्रा॥ अतिचार छट्ठाव्रत ने
 ॥ १७ ॥ तयारया सचित द्रव्यादिक भोगवै । बलि
 भेल सभेल करि स्थायहो ॥श्रा॥ गहणां कपडा-
 दिक अभिका भोगवै । उपभोग परिभोग अधिक
 सेवायहो ॥श्रा॥ अतिचार सातमां व्रतनें ॥१८॥
 दंगालि कम्मादिक जे कहा । पंदराही कर्मादान
 हो ॥श्रा॥ त्यानें जाणें पिण आदरै नहीं ॥ पाप
 टालै ते बुद्धिवानहो ॥श्रा॥ अ ॥ १९ ॥ काम क-
 था कुचेष्टा करै । बलि बोलै मुख अरिवाय हो ॥
 ॥श्रा॥ अधिकरण जोडि करै येकठा । उपभोग
 परिभोग बधायहो ॥श्रा॥ अतिचार आठमां व्रतनें

॥ २० ॥ येह पांचूहीं अनर्थे सेवियां । जब लागे
 अतिचारहो ॥ श्रा ॥ अर्थे पिण सेव्यां पापछे ।
 पिण व्रतनें नहीं दोष लिगार ॥ श्रा ॥ अ ॥ २१ ॥
 मन बच कायानां जोगनें । पाडवा प्रवर्तायहो ॥
 ॥ श्रा ॥ समाईमें समतान करि हुवै । अण पूगी पारी
 हुवै समायहो ॥ श्रा ॥ २२ ॥ त्यागी वस्तु बाहर थी
 अणायले । बलि पाछी देमोकलायहो ॥ श्रा ॥ श-
 ब्द रूप दिखाय सानीं करै । पुद्गल नांखी आपो
 जणायहो ॥ श्रा ॥ अतिचार दशमां व्रतनें ॥ २३ ॥
 सैज्झा संथारो अपडि दुपडि लेवै । अण पूजै
 पूजै बिपरीतहो ॥ श्रा ॥ इम उचार दिक्कनीं भूमि-
 का । पौसो पालै नहीं रूडी रीतहो ॥ श्रा ॥ अति-
 चार इज्ञारमां व्रतनें ॥ २४ ॥ सचित भूक्यो दां-
 क्यो वहरायदे । अतिक्रम कालनूं मानहो ॥ श्रा ॥
 आंपणी वस्तु पारकी करै । बलि देवै मच्छर दा-
 नहो ॥ श्रा ॥ अतिचार बारमां व्रतनें ॥ २५ ॥
 सुभक्ती वस्तु करै असुभक्ती । असुभक्ती करै सूजती
 तांमहो ॥ श्रा ॥ दान देवा न देवा कारणौ । बार-
 मूव्रत भांगै आंमहो ॥ श्रा ॥ अ ॥ २६ ॥ येह लोक
 परलोकरी बान्छा करै । जीवण मरणूं बन्छै ता-

महो ॥श्रा॥ काम भोग तराँ बन्छा करै । सले-
 पणामें दोष लागै आंमहो ॥श्रा॥ येह अतिचार
 सलेखणानां कह्या ॥ २७ ॥ हूं चक्रिवर्त होवुंतो
 भलो । यह लोकरी बन्छा मांहिहो ॥श्रा॥ हूं इन्द्रा-
 दिक पद्मी पायजो । ते परलोक बन्छा ताहिहो ॥
 ॥श्रा॥ येह अतिचार ॥ २८ ॥ जीवण मरण
 बन्छां दोष छै । बलि बन्छ्यां कामनें भोगहो ॥
 ॥श्रा॥ ये पांचुहीं कर्तव्य पाडवा । तीनुहीं कर-
 णां नें तीन जोगहो ॥श्रा॥ अ ॥ २९ ॥ सघला
 अतिचार भेला क्रियां । निन्नाणु कह्या जिन रा-
 यहो ॥श्रा॥ ते टालै सघला भावसूं । तो आरा-
 धक पद थायहो ॥ श्रावक जन ॥ अतिचार सर्व
 इस जाणवा ॥३१॥ इति ॥ स्वामी श्री भीषनजीकृत

॥ अथ पाडिमांधारी की ढाल ॥

॥ श्रीजयाचार्य कृत ॥

॥ दोहा ॥

प्रत्यक्ष और पंच में । भूला धारी भैख ॥ धर्म
 कहै अन्नत मभे । कर रह्या कूडी टेक ॥१॥ श्राव-
 क नें जीमावियां । धर्म कहै करिताण ॥ ते व्रत

अव्रत नहीं आलख्यो । मिथ्या दृष्टी जाण ॥२॥
 कहै पाडिमां धारी श्रावक भर्णी । पोष्यां येकान्त
 धर्म ॥ त्यां पाडिमां धर्म न आलख्यो । भूला अ-
 ज्ञानी भर्म ॥ ३ ॥ पाडिमां तो धर्म मार्ग सुक्तिरो ।
 अव्रत आज्ञा बार ॥ निर्णय कहूं छूं तेहनों ।
 सांभल जो विस्तार ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

या अनुकम्पा जिन आज्ञा में ॥ एदेसी ॥
 पहली पाडिमां में समकित शुद्ध पालै । पंच
 परमेश विना नमें नाहीं ॥ पिण सम्यक् प्रमाणें
 व्रत नहीं धार्या । ते अव्रत नहीं पाडिमां धर्म मांहि ॥
 पाडिमां धार्यां रो निर्णय कीजै ॥ १ ॥ बीजी प-
 डिमां में व्रत वधारै । पिण सामायक देशावगासी
 करै नाहीं ॥ जे व्रत धार्या ते निरमल गुण छै ।
 आगार ते नहीं छै धर्म मांहीं ॥ ५ ॥ २ ॥ तीजी
 में समकित व्रत छै निरमल । सामाई देशावगासी
 पिण धारै । महिनां में छ पोषा करणी न आवै ।
 ते व्रत पाडिमां अव्रत आज्ञा बारै ॥ ५ ॥ ३ ॥
 चौथी पाडिमां में पाछला गुण सघला । मास में

छ पोसा शुद्ध मान ॥ पिण एक रात्री री उपाशक
 पडिमां । करणी न आवै निश्चल ध्यान ॥ प ॥ ४ ॥
 पांचमीं पडिमां में पाछला गुण सधला । पिण
 एक रात्री री पडिमां जांण ॥ स्नान नै रात्री भो-
 जन त्यागै । काछ न बालै समता आंगै ॥ प
 ॥ ५ ॥ दिवश नुं शील रात्री नीं मर्यादां । ये
 पांचुं बोल अधिका जांण ॥ जघन्य एक दोय
 तीन दिवश लागि । उत्कृष्टा पांच मास पिछाण
 ॥ प ॥ ६ ॥ ये दिवश नुं शील ते तो छै पडिमां ।
 रात्री आघार ते पडिमां नाहीं । आगार तेह तो
 अब्रत आश्रव । अब्रत छै ते तो अधर्म मांहीं ॥ प ॥ ७ ॥
 छट्टी पडिमां में सर्वथा शील ब्रत । पाछला त्याग
 ते सर्व पालै ॥ सचित खावा नुं आगार ते अब्रत ।
 उत्कृष्टी षट मास नीं निहाल ॥ प ॥ ८ ॥ सात-
 मी में पाछला गुण सधला । सचित खावारा
 त्याग ज कीधा ॥ पिण आरंभ नुं आगार ते अ-
 ब्रत ॥ उत्कृष्टी सातमांस प्रसिद्धा ॥ प ॥ ९ ॥
 आठमीं में आरंभ करिवो त्याग्यो । पिण आरंभ
 करावण री आगार ॥ पाछला त्याग सधला शुद्ध
 पालै । उत्कृष्टा आठ मांस विचार ॥ प ॥ १० ॥

नवमीं में आरंभ करावणुं त्याग्यो । पिण तिणरे
 अर्थे कीधो भोगवै आहार ॥ उत्कृष्टी नवमांस नी
 पडिमां । पाकूला त्याग सहित सुखकार ॥ प ॥ ११ ॥
 दशमीं पडिमां में पाकूला गुण सघला । पोतारै
 अर्थे कीधो भोगवै नांही ॥ खुर मुंड करावै तथा
 सिखा राखै । उत्कृष्टी दश महिनां तांई ॥ प ॥ १२ ॥
 न्यातीलारै वस्तुगम्यां तिण नें पूछ्यां । जाण
 तो हुवै तो कहै जाणुं सोय ॥ न जाणतो हुवै
 तो कहै नहिं जाणुं । त्यांरै सुखिया सुखे दुःखि-
 ये दुःखयो होय ॥ प ॥ १३ ॥ इज्ञारमीं में साधु-
 रो भेष करि नें । पाकूला त्याग पालै सुखदाय ॥
 खुर मुंड तथा मांथै लोच करावै । पिण न्याती
 लारो प्रेम बंध दूटो नांय ॥ प ॥ १४ ॥ न्यातीलारो
 पेज बंधन तिण कारण । न्यातीलारो घररो लेवै
 आहार ॥ और घरारो लेणो त्याग्यो ते व्रत छै ।
 पिण न्यातीलारो आगार ते अव्रत धार ॥ प
 ॥ १५ ॥ पडिमां धारी पांच में गुण ठाणें । तिणरी
 अत्याग रूप अव्रत श्रद्धै नांहि ॥ चौकडी स्युं देश
 व्रती कह्यो छै । इम कहै तिणरो जाव धारो मन
 मांहि ॥ प ॥ १६ ॥ सचित अचित सूक्तो नें

असूक्तो । यां व्यासंरी अव्रत अनादिरी दाखी ।
 सचित असूक्तो त्याग्यो ते व्रत छै । बाकी आ-
 गार रह्यो ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १७ ॥ न्याती-
 ला अणन्यातीलारो आहार भोगवर्णो । आगार
 ते अव्रत ठेठरी होयौ ॥ अणन्यातीलारो त्याग
 कियो ते व्रत छै । न्यातीलारो आगार ते अव्रत
 जोयौ ॥ प ॥ १८ ॥ अज्ञात कुलरी साधूरे गौ-
 चरी । समवायंग उत्राध्ययन छै साखी ॥ पडिमा
 धारीरै न्यातीलारो प्रेम बंधन तिणसुं । न्यातीलारो
 लेवै ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १९ ॥ किण क्रोडरूपयां रो
 परिग्रह राख्यो । बालि स्त्री पुत्रादिक परिवारः ॥
 त्यांरो पेज बंधन रह्यो तेहिज अव्रत । सर्व छै ति-
 णरा परिग्रामंभार ॥ प ॥ २० ॥ सैंकडां गुमास्ता
 तिणरै कुपवै । हजारों रुपयांरो नफो पिण आवै ।
 तिणरी अव्रतरो पाप लागै निरंतर । अशुभ जोग
 रूंध्या तिणरो पाप न थावै ॥ प ॥ २१ ॥ तोटा
 नफारो तो मालिक तोहेज ॥ सूक्ष्म पर्णें ममता
 भाव निरंतर ॥ ये प्रत्यक्ष अव्रत उघाडी दीसै ।
 बुद्धिवंत छाण करै अभ्यन्तर ॥ प ॥ २२ ॥ लाख
 रुपयांरो परिग्रह हुंतो । ते पोता नां मंत्री नें दीयो

भोलाई ॥ पछै इज्ञारै पडिमां व्है तिण वेल्यां । ते
 रुपया छै किणार परिग्रहा मांहीं ॥ प ॥ २३ ॥
 मित्ररै अव्रत सहस्र नाणांरी । तिणनें लाखरी
 अव्रतरो पाप न लागै । हिव लाखरी अव्रतरो पाप
 किणनें । ये मालिक छै पडिमां धारी सागै ॥ प
 ॥ २४ ॥ कदा पडिमां में तिण काल कियो तो ।
 मित्र न राखै तिणरी धणीयाप ॥ तिण धनरो
 धणीं तो पडिमां धारी हुंतो । तिणसुं अव्रतरो
 तिणनें कह्यो पाप ॥ प ॥ २५ ॥ तिण पडिमां
 धारी नें कहै पडिमां में । जावज्जीव पंच आश्रव
 त्यागो । जब कहै म्हांरा भाव नहीं छै । तिण
 कारण आसा बंछा रही लागो ॥ प ॥ २६ ॥
 उत्कृष्टो मांस इज्ञारा पाछै । कायासू आश्रव सेव-
 गारो आगार ॥ तिणसू काया पिण छकायनुं शस्त्र ।
 तिणरी सार संभार ते आज्ञा बार ॥ प ॥ २७ ॥
 सामाइक मांहि श्रावकरी आतमां अधिकरण । ते
 शस्त्र छकायनुं भाख्यो । सूत्र भगवतीरै सातमां
 शतके । पहिले उद्देशै श्रीजिन दाख्यो ॥ पा ॥ २८ ॥
 सामाइक में धन भार्यादिकयी ॥ ममता भाव पेज
 बंधन त्हायो । आठगां शतकरै पंच में उद्देशै ।

धन भार्या तिणराहिज कहा जिनरायो ॥ प ॥
 २६ ॥ तिम पडिमां में पिण धन भार्यादिकरी ।
 ममता भाव पेज बंधन जाणों । तिणसुं धन भार्या
 दिकरी अव्रत छे तिण नें । तिणरो पाप लागै छे
 निरंतर आंखों ॥ प ॥ ३० ॥ इण न्याय तिण नें
 काहिजे व्रताव्रती । धर्माधर्मी तिण नें काहिजे ॥
 व्रत धर्म नें अव्रत अधर्म । पिण अव्रत में धर्म
 किम घापी जे ॥ प ॥ ३१ ॥ पडिमांधारी आ-
 हार करै अव्रत में । तिण नें धर्म बतावै नाहीं ॥
 तो देणवाला नें धर्म किण विध होसी । दान
 दियो तिण अव्रत सेवण तांहि ॥ प ॥ ३२ ॥
 धर्माधर्मी कहै पडिमां धारी नें । व्रताव्रती पिण
 तिण नें बतावै । बलि कहै तिणरै अव्रत नहीं
 रही बाकी । एहवा विकलां नें किम समझावै ॥
 प ॥ ३३ ॥ व्रताव्रती कहै पिण अव्रत न कहै ।
 आपरी भापारो आप अजाण ॥ कोई कहै म्हांरी
 माता बांझडी । तिण सरिखो ते पिण मूर्ख जाण
 ॥ प ॥ ३४ ॥ पडिमां धारी आहार पाणी लेवै
 तै । कप्यानीं सार करै ते सावद्य व्यापारो । ति-
 ण नें पिण सावद्य जोग न थछै ओ पिण विक-

लारै पूरा अंधारो ॥ प ॥ ३५ ॥ जो पडिमां में
 सावद्य जोग नहीं वाकी । बलि अव्रत पिण्य ये
 तिणरै नहीं जाणुं । तो पडिमां में दीक्षा लेवण
 रो मन हुवै तो । किसा सावद्य जोगरा करै पच-
 खाणुं ॥ प ॥ ३६ ॥ जाव जीव सर्व सावद्य जोग-
 रा त्याग मांहि नें ॥ दीक्षा लेतां इम करै पच खाणों
 इणरै लेखै सावद्य जोगरो आगार ते त्याग्यो ।
 समझोरै समझो थे मूढ अयाणों ॥ प ॥ ३७ ॥
 पडिमां २ करि रखा मूरख । ते पडिमां तो छै श्री-
 जिनधर्म ॥ जे पडिमां आदस्तां अव्रत रहि छै
 ते सेव्यां सेवायां बंधसी कर्म ॥ प ॥ ३८ ॥ प्र-
 त्याख्यानी चौकडी रहि श्रावकरै । तिण चौकडी
 नें कोई अव्रत जाणै । आप छांदै ऊंधी उटका
 मेलै । पीपल बांधी मूरख ज्युं ताणै ॥ प ॥ ३९ ॥
 अनन्तानुबंधी पहिलै गुण ठाणै । अप्रत्याख्यानी
 चौथे गुण ठाणै । प्रत्याख्यानी पांच में रही वाकी ।
 छट्टा गुण ठाणाथकी संज्वल जाणै ॥ प ॥ ४० ॥
 चौकडी नें अव्रत कहै त्यांरै लेखै । साधू के पिण्य
 संज्वल की रही सोय ॥ चौकडी खपावै तेहिज व्रत
 अद्वै । तो चौथे गुण ठाणै व्रताव्रती होय ॥ प ॥ ४१ ॥

संज्वलनुं लोभ दशमें गुण ठाणें । तिण लेखै
 व्रताव्रती त्यांनेहिज कहिजे ॥ जो साधुनें सर्व
 व्रती मांहि घालै तो । चोकडीनं अव्रत नांहि था-
 पिजे ॥ पा ॥ ४२ ॥ चोकडी तो छै कषायआ-
 श्रव । तिणनें अव्रत आश्रव कहै किणन्याय ॥
 कषाय आश्रव नें अव्रतआश्रव । जुवा २ कह्या
 जिनराय ॥ प ॥ ४३ ॥ मिथ्यात अव्रत प्रमाद
 कषाय । जोग आश्रव समवायंग पंचम ठाणें ।
 येतो अव्रतआश्रव बीजो कह्यो जिन । कषाय
 आश्रव चौथो जाण ॥ प ॥ ४४ ॥ चोकडी तो
 चौथोआश्रवतिण नें । अव्रत कहै मूढ बिना
 विचार ॥ अव्रत तो छै दूजो आश्रव । समझोरे
 समझो ये मूढ गिमार ॥ पा ॥ ४५ ॥ सोलाही कषाय छै
 कषायआश्रव । बारा नें कषाय आश्रव वतावै ॥
 चार कषाय नें कहै अव्रतआश्रव । गालांरा
 गोला घड घड चलावै ॥ प ॥ ४६ ॥ कषाय-
 रातो त्याग किया नहिं होवै । येहनां कर्म घट्यां
 गुण प्रगटै उदारो ॥ अव्रतरा त्याग किया हुवै
 व्रती । तिणसुं कषायनें अव्रत आश्रव न्यारो ॥
 ॥ प ॥ ४७ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी ।

चौकड़ी नै अवत भतजाणों ॥ पडिमां धारीरै
 अवत आहाशदिकरी । पेज बंधगु न्यातीलारे
 पिछाणों ॥ प ॥ ४८ ॥ पडिमां धारीनै समग
 भूए कह्यो छै । ते पिण देशथी उपमां जाणों ॥
 अंतगढदशामें कह्यो द्वारका नै । प्रत्यक्ष देव
 लोक भूया पिछाणो ॥ प ॥ ४९ ॥ जिन नहिं
 पिण जिनवर सरिषा । थेवरां नै कह्या उववाई
 मांहीं ॥ अनन्त गुण फेर त्यांरा ज्ञानरै मांहीं ।
 पिण देश थकी उपमां दीधी बताई ॥ प ॥ ५० ॥
 चक्रिवरतरा अश्वरतन नै । त्तमरै लेखै कह्यो
 साधु सरीसो ॥ जम्बू द्वीप पन्नती में श्रीजिन
 भाख्यो । ए पिण देशथी उपमां दीसो ॥ प ॥ ५१ ॥
 तिम पडिमां धारी नै कह्यो साधु सरीखो । ते पि-
 ण देशथी उपमां जाणों । पडिमां बिचै तो संथारो
 अधिक छै । ते संथारामें पिण ग्रहस्थ पिछाणों ॥
 ॥ प ॥ ५२ ॥ उपासगदशा में कह्यो गीतमनै ।
 आगां दश्रावक संथारा मांह्यो ॥ हूं ग्रस्थावास
 बसतो ग्रहस्थ छूं । मोनै इतनुं अवधि ज्ञान उपनौ
 आयो ॥ प ॥ ५३ ॥ संथारा में पिण ग्रहस्थ क-
 हिजे । तो पडिमा में ग्रहस्थ न कहै किण लेख ॥

इण न्याय पडिमां धारीनें ग्रहस्थ कहिजे । तिणरो
खाणु पीणों अन्नत में देख ॥ प ॥ ५४ ॥ ग्रह-
स्थरी बैयावच करै करावै अनुमोदे तो साधूनें
बीर कह्यो अणाचार ॥ दशवैकालिकरै तीजे
अध्ययनें । तो ग्रहस्थ नें पिण धर्म नहीं छै लि-
गार ॥ प ॥ ५५ ॥ इक्यावन बोल सेव्यां अणा-
चार साधूनें । तो ग्रहस्थ सेवै तिणमें पाप कर्म ॥
ज्यू ग्रहस्थरी बैयावच अणाचार साधूनें । ग्रहस्थनें
किण विध होसी धर्म ॥ प ॥ ५६ ॥ ग्रहस्थरी
बैयावच अणाचार में कही जिन । तो पडिमां
धारी पिण ग्रहस्थी जाणूं ॥ तिणनें अशणादिक
देवै तो व्यावच । तिणमें धर्म किहांथी होसारे
अयाणूं ॥ प ॥ ५७ ॥ ग्रहस्थनें दान दीधां अ-
नुमोदयां । साधूनें प्रायश्चित्त आवै चौमासी ॥
निसीथरै पंदरमें उद्देसै भाण्यो । तो ग्रहस्थनें धर्म
किण विध थासी ॥ प ॥ ५८ ॥ तो पडिमां धा-
रीनें पिण ग्रहस्थ कहिजे । तिण दाननें साधु
अनुमोदि तो दंड आवै ॥ तो देवण वालानें धर्म
विम होनी । बुद्धिबंत सूत्र नू न्याय मिलावै ॥
॥ प ॥ ५९ ॥ श्रावकरो खाणों पीणों सर्व

अव्रत में । सुयगडा अंग अठार में साखी ॥
 वलि सूत्र उववाड़ै प्रश्न बीस में । ते अव्रत से-
 व्यां कहै धर्म अनाखी ॥ प ॥ ६० ॥ अव्रत नें
 भाव शस्त्र कह्यो छै । सूत्र ठाणा अंगरे दश में
 ठाणें । ते अव्रत सेवायां धर्म पुन्य अज्ञा-
 नी जाणें ॥ ६१ ॥ पाडिमां धारी नें तो कह्यो
 बाल पंडित । वलि व्रताव्रती तिण नें कहिजे ॥
 धर्माधर्मी पिण कह्यो छै तिण नें । बुद्धिवंत न्याय
 विचारी लीजे ॥ प ॥ ६२ ॥ अधर्मीरै विषै रह्यो
 असंजती । तिण अधर्म नें कियो अंगीकार ॥
 धर्मी नें विषै रह्यो संजती । ते धर्म आदरी नें
 विचरै उदार ॥ प ॥ ६३ ॥ धर्माधर्मी में रह्यो सं-
 जतासंजती । तिण धर्म अधर्म कियो अंगीकार ॥
 सूत्र भगवतीरै सतर में शतकै । पाहिलै उद्देश
 कह्यो विस्तार ॥ प ॥ ६४ ॥ व्रत ते धर्म अधर्म
 अव्रत ते । अव्रत सेवायां धर्म न होय ॥ पाडिमां
 धारी नें श्रमण भूए कह्यो छै । ते देशधकी ओप-
 मां अवलोय ॥ प ॥ ६५ ॥ सुघला ही श्रावक
 भेला करै तो । येक साधूरै तुल्य न आवै ॥ उत्रा-
 ध्ययन पंचम अध्ययन । तो पाडिमां धारी साधू

किमथावै ॥ ६६ ॥ बलि पोसा में सावद्यो आ-
 गार न श्रद्धे । ये पिण विकलारै पूगे अंधारो ॥
 समायक में आत्मां शस्त्र कहिजे । तिम पोसा में
 पिण शस्त्र विचारो ॥ प ॥ ६७ ॥ बलि यत्तन करै
 गहणा वस्त्र कायारा । ते पिण सावद्य जोग प्रसि-
 द्धा । सर्व सावद्य जोगरा त्याग साधारै । इण
 सर्व सावद्यरा त्याग न कीधा ॥ प ॥ ६८ ॥ बलि
 पुत्र न्यातीला परिग्रह सें । ममत्व भाव पेज बंधन
 पूरो ॥ वादर पणों त्याग्यां ते पाप टलियो । पिण
 सूक्ष्म पणों तो न कियो दूरो ॥ प ॥ ६९ ॥ छै
 पोसा सांस में करै कोई श्रावक । येक वर्षरा बहो-
 त्तर थायो । तीमत्तरमूं पोसो सम्वतसरीनू । यां दिनां
 रो व्याज लेवै किय न्यायो ॥ प ॥ ७० ॥ सैक-
 डां गुमास्ता कमावै तिणारै । इतरा दिनांरो नफो
 आवि घरमंभारो ॥ तो त्यांरो पिण तेहिज मालि-
 का छै । इण लेखे सूक्ष्मपणे रह्यो आगारो ॥ प ॥
 ७१ ॥ इनाहिज आगार पडिमां धारी ते पिण ।
 आगार में धर्म मूल म जाणों ॥ पडिमां ते व्रत
 आगार ते अन्नत । यां दोयां नैं रुडी रीत पिछा-
 णों ॥ प ॥ ७२ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी ।

अव्रत सेयां धर्म म थापो ॥ धर्मरी आज्ञा देवै
 तीर्थकर । अव्रतरी आज्ञा न देवै जिन आपो ॥
 प ॥ ७३ ॥ पडिमां धारीरी अव्रत उलखावन ।
 जोड कीधी पाली शहर मंभारो ॥ सम्बत् अठारह
 नें वर्ष चोराणुवै । भादवा विद येकम गुरुवारो ॥
 प ॥ ७४ ॥

॥ अथ तीनमनोरथ ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमुं अरिहंत सिद्ध बलि आचारज उक्ताय ।
 साधु सकल पद वंदतां आनंद मङ्गल थाय ॥ १ ॥
 श्रीजिन वर स्वमुख यकी तीजा अङ्ग मभार ।
 तीजै ठायें आखिया तीन मनोरथ सार ॥ २ ॥
 श्रावक व्रत धारक जिके चिन्तवतां सुख कार ॥
 कर्म महा अघ निरजरै पाँमें भव नों पार ॥ ३ ॥

॥ दाल ॥

भाखैं कुण्ण मुरार, धृक्कार संसार नैरे ॥ एदेशी ॥

प्रथम मनोरथ मांहि. श्रावक इम चिन्तवैरे । ये आरंभ
 दुःख दाय, परिग्रहथी दुबैरे ॥ १ ॥ महा अनरथ नुं मूल, परि-
 ग्रह जिन कह्यारे । किंचित नें बालस्थून, पंच भेदैं ग्रहारे ॥ २ ॥

खेतु बधु विक जान, हिरण्य सुवर्ण सहीरे । कुम्भिधातु धन
 धान, द्विपद चौपद महीरे ॥ ३ ॥ यथा शक्ति प्रमाण, साग
 उपरान्त ही । पंचम व्रत गुन स्नान । करण जोगवन्त ही ॥ ४ ॥
 जे राख्यो आगार, ते समस्त द्वार हैं । देवों देवायां तार, पाप
 संचार हैं ॥ ५ ॥ सचित्त अचित्त जे वस्तु, आहार नें पाणिपां
 सावध कार्य समस्त, भोगायां भसो आखियां ॥ ६ ॥ हिंसा
 दुवै पटकाय, तर्फी ग्रहवास में । जिन मुनि आंग न ताप,
 धर्म नहीं आसमें ॥ ७ ॥ आरंभ परिग्रह यह, कुगति दातार
 हैं । क्रोध मान माया सोभ, तणुं करण हार हैं ॥ ८ ॥ संजम
 समकित कटप, तरु नों भंजनूं । महा मंद बुद्धि अज्ञान, तणों
 मन रंजनूं ॥ ९ ॥ मांठी लक्ष्मा होय, भारी रौद्र ध्यान नें ।
 न्याय न लूके कोय । लिप्त धनदान नें ॥ १० ॥ सुमति
 शुचि सौभाग्य, विनासक यह ही । जन्म मरण भय अथाग,
 दुवै परिग्रह एकी ॥ ११ ॥ कटवा कर्म विपाक, तणों हेतु सधै ।
 तीव्र तृष्णा बेस, विषय इन्द्री बधै ॥ १२ ॥ दारुण कर्कस दुःख
 वेदन असराल ही । कूट कपट परपंच करै विकराल ही ॥ १३ ॥
 इण सरीसो नाहि मोह पास, प्रति वेध हैं । स्नेह राग करि
 जास, मूर्छा अंध हैं ॥ १४ ॥ दान कुपात्र दुरगति, दायक
 जिन बौह । परिग्रहणी देवाय ते पी शिव किमसहै ॥ १५ ॥
 एणां कामनीं प्रीत, विनासै स्यात में । कुल मर्यादनीं रीत,
 छानै बलि न्याति में ॥ १६ ॥ यहवो आरंभ परिग्रह, जे दिन
 राग स्युं । पासे ते दिन धन्य, अंतस वैराग स्युं ॥ १७ ॥
 बाह अश्वन्तर श्रेष्ठ तरी मूर्छा तजुं । प्रगटै भल रवितेह, नांम
 मरु नें भजुं ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

दूजो मनोरथ चिन्तवै, श्रावक जे व्रत वार ।

तन धन जोवन कारसूं, विणसंता नहि वार ॥ १ ॥

भात पिता बंधव त्रिया, पुत्रादिक परिवार ।

स्वारथ लग सहुको सगा, सही संसार असार ॥ २ ॥

ग्रह वासै हिवडां वसूं, चारित मोह जे कर्म ।

क्षय तपस्मियां थी कदा, लेस्यूं चारित्र धर्म ॥ ३ ॥

॥ ढाल दूजी ॥

वैरागे मन वालीयो तथा कृष्ण भावै रुडी भावनां एदेसी ।

धन २ संजम धरि मुनी । लाग्यो ते संसार ॥ पंच महा-
व्रत धारका । पालै पंच आचार ॥ धन २ संजम धर मुनी । १ ।
श्री जिन आणां बाहिरो । सावद्य कारज ताय ॥ नहि आदेश
दे तेहनूं । मौन धार मुनि राय ॥ धन २ ॥ २ ॥ दश विध
यति धर्म धारियो । यती नाम कहिवाय ॥ जीला विषय इन्द्रि-
यां तणीं । द्वितीय अर्थ सुख दाय ॥ धन २ ॥ ३ ॥ दोष
वर्णालीस टालके । ले भिक्षू शुद्ध आहार ॥ कहां भिक्षू ये
गुन थली । भेदै कर्म अपार ॥ धन २ ॥ ४ ॥ साधै शिव मग
साधनां । साधु महा गुण खान ॥ द्वादश भेदै तप करै । तपसी
नाम वखान ॥ धन २ ॥ ५ ॥ मतहणों २ जीवनै । दे उपदेश
महन्त ॥ माहण म्हा गुण आगला । शान्तिभाव ते शंत ॥ धन २ ॥
॥ ६ ॥ कल्याण कारी ते भणीं । कल्याणिक मुनि नाम ॥
विघ्नोपस्म कारी पणै । मंगलीक अभिराम ॥ धन २ ॥ ७ ॥

धर्मोपदेशक गुण धकी । पूजनीक तसु पाय ॥ तीन लोकना
 अधपती । धर्म देव मुनिराय ॥ धन २ ॥ ८ ॥ चित्त परसन
 दरशन तसु । चैत्य सदा सुख कार ॥ नव विध पालै ब्रह्म
 कृपा । बलिहारी ब्रह्मचार ॥ धन २ ॥ ९ ॥ जन्म सफल
 कीयो महा ऋषी । षट्काया प्रतिपाल ॥ भवसागर में डूवतां ।
 निहाज समान दयाल ॥ धन २ ॥ १० ॥ स्नेह पास नहिं
 केहसुं । सम्बगी वैराग ॥ ग्रंथी त्याग निग्रंथहै । महकत सुयस
 अथाग ॥ धन २ ॥ ११ ॥ शुद्ध कृपा में श्रम करै । श्रमण
 कहिजे तेह ॥ योग विमल साधै सदा । तिणसुं योगी केहह ॥
 ॥ धन २ ॥ १२ ॥ आर्जव आर्जव भावधी । माद्वै माद्वै
 भाव ॥ शौच शुची कृपाभलो । करता मुक्ति उपाय ॥ धन २ ॥
 ॥ १२ ॥ धर्म विणज विणजै सदा । सार्थ वाह सुविचार ॥
 कर्म कटक दल जीतवा । सेनापति ब्रत धार ॥ धन २ ॥ १४ ॥
 मन बच काया गोंपवै । सुमती पच प्रकार ॥ इन्द्रादिक स्व-
 मुख करी । न लह गुणनों पार ॥ धन २ ॥ १५ ॥ सबला
 एकवीस दोष ज । टालै ते भल रीत ॥ तीन तीस आशातनां
 करै नहिं छुविनीत ॥ धन २ ॥ १६ ॥ आचारज उवज्झा-
 यरी । व्यायच सें धर प्यार ॥ तपसी लघू पुन ग्लाननै । बल्ला-
 दिक दे आहार ॥ धन २ ॥ १७ ॥ भव अम भमता जीवनें ।
 तारणा तरणा समान ॥ गहन कंतार संसारयो । ल्यावै शिव मग
 रपान ॥ धन २ ॥ १८ ॥ चंद्र तलीं पर निरमला । तम मिट्या
 मति नांश ॥ अटिन तमर गिर सारिपा । खिद्व ज्ञान प्रकाश ॥
 ॥ धन २ ॥ १९ ॥ जिन भाषित दाषित सदा । साधु श्राव-
 कन धर्म ॥ समन विद सम लेखी । पालै कृपा पर्म ॥ धन २ ॥
 ॥ २० ॥ सातम भाई विचरता । ध्यावै निज ध्येय ध्यान ॥

अकरता पद परिणामे । धन २ ते गुणवान ॥ धन २ ॥ २१ ॥
 निन्दत वंदत सम पक्षे । राग द्वेष नहि होय ॥ जस अपजस
 जीवण परणामे हर्ष सोग नहि कोय ॥ धन २ ॥ २२ ॥ सफल
 जमारो धन घडी । भावै जाग्रत जेह ॥ अमति बंध नायु परै ।
 तजी कुटम्ब थां नेह ॥ धन २ ॥ २३ ॥ चारित्र मोह क्षयोप
 सम्पां । हूं यहवो ब्रत धार ॥ आस्युं ते दिन धन घडी । आ-
 नन्द हर्ष अपार ॥ धन २ ॥ २४ ॥

॥ दोहा ॥

तीजो मनोरथ चिन्तवै, मनमें श्रावक येम ।
 संजम ग्रहि शुभ भावसें, लिया निम्बाबुं नेम ॥१॥
 ये संसार अघाथ में, अभिर्यो काल अनन्त ।
 बहुषट्तरय भोजन किया, समता नहि उपजत ॥२॥
 चरण सहित अणशण कछुं, पादोपगमन संधार ।
 अवशर मरण तथै बलि, होय जो सरखां च्यार ॥३॥

॥ ढाल ॥

रहो २ राजेसरा केशरिया तथा हूं तुज आगल सीकहं
 कन्नईया एदेशी ।

शुभाशुभ पुद्गल फरसिया ॥ गुणवंता ॥ षट्त्रय दिशनुं
 आहार हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ दुःगंध सुगंध फरस आठही ॥
 ॥ गु ॥ पंच वरण रस धारहो ॥ गुणवंता ॥ श्रावक ॥ भावै
 यहवी भावनां गुणवंता ॥ १ ॥ मोटी माया मोहलो ॥ गु ॥

छोटी पुद्गल पर्याय हो ॥ गु ॥ आ ॥ उदय यथा दुःख नीप-
 ज ॥ गु ॥ देह चेतन राव हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ २ ॥
 प्रकृति अटवीस करी ॥ गु ॥ क्रोध मान माया लोभ हो ॥ गु ॥
 चिह्न २ भेदें संचर ॥ गु ॥ पायें चेतन खोभ हो ॥ गु ॥ आ ॥
 भावै ॥ ३ ॥ हान्ति रत्तारत्त भय बलि ॥ गु ॥ सोग दुगंछा
 घाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ स्त्री पुरुष नपुंसक तिहुं ॥ गु ॥ मोह चा-
 रित कहिवाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ ४ ॥ दर्शन मोह
 उदय पकी ॥ गु ॥ मिच्छत समकित जान हो ॥ गु ॥ आ ॥
 मिश्र मोहनी ये तिहुं ॥ गु ॥ दावै निजगुन खान हो ॥ गु ॥
 आ ॥ भावै ॥ ५ ॥ असाता वेदनोदय ॥ गु ॥ भूख तृपादि
 पीडित हो ॥ गु ॥ आ ॥ लाभ भोगान्तर क्षयोपसम्पत् ॥ गु ॥
 भोग साक्ति पावत हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ ६ ॥ नाम उदय
 पी सहु मिलै ॥ गु ॥ गमता अगमता भोग हो ॥ गु ॥ आ ॥
 विविध प्रकारे भोगव ॥ गु ॥ शरीरादि रोग्य आरोग्य हो ॥ गु ॥
 आ ॥ भावै ॥ ७ ॥ बार अनन्त सुख दुःख सहा ॥ गु ॥
 भव भव भयियो जीव हो ॥ गु ॥ आ ॥ स्वर्ग नरक फुन मनुष्य
 में ॥ गु ॥ तिर्यच गति में अतीव हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ ८ ॥
 अनन्त मेरु सम आहारिया ॥ गु ॥ अनन्त पुद्गल पर्याय हो
 ॥ गु ॥ आ ॥ एक एक लोकाकाश में ॥ गु ॥ बार अनन्त
 कहिवाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ ९ ॥ भोजन कीया इण
 धात्मा ॥ गु ॥ बहु मूल्यनों तंत हो ॥ गु ॥ आ ॥ इय जांगी
 अणमण कर ॥ गु ॥ हेरै अवर मेत हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥
 १० ॥ नाराद के पापना ॥ गु ॥ धानकपने जालोय हो ॥ गु ॥
 आ ॥ सिद्धि दुःख के पदा ॥ गु ॥ मूल्य रहित सहुकोय हो
 ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ ११ ॥ नाख बांगनी धोनि नै ॥ गु ॥

वारम्बार खमाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ राग द्वेप तज सहुयकी ॥
 ॥ गु ॥ हर्ष सोग नहीं कांय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ १२ ॥
 च्यार प्रकार आहार जे ॥ गु ॥ त्यागि ममता राहत हो ॥ गु
 ॥ आ ॥ पंच आश्रव पचखी करी ॥ गु ॥ पादोपगमन सहीत
 हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ १३ ॥ जंगम स्थावर सम्पति ॥ गु ॥
 द्विपद चापद बोसराय हो ॥ गु ॥ आ ॥ अरिहन्त सिद्ध साधु
 ध्यान थी ॥ गु ॥ शिवगति नैडी घाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥
 ॥ १४ ॥ यह लोक पर लोकनी ॥ गु ॥ जीवितव्य मरण सधीर
 हो ॥ गु ॥ आ ॥ आसा नहीं काम भोगरी ॥ गु ॥ सम परि-
 णाम सुधीर हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ १५ ॥ अन्त समा में
 यहबो ॥ गु ॥ पच्छिडत मरण जे घाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ मनरा
 मनोरथ जदि फलै ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष मवाय हो ॥ गु ॥ आ ॥
 ॥ भावै ॥ १६ ॥ धन्य दिवस धन्य जे घडी ॥ गु ॥ आराधक
 पद पाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ अल्प भवारे आंतरे ॥ गु ॥ सि-
 द्धगति पै ते जाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ १७ ॥ श्री भिन्न
 गुण आगला ॥ गु ॥ प्रगट बतायो राह हो ॥ गु ॥ जिन धर्म
 जिनआणां महीं ॥ गु ॥ आज्ञा बाहर नाहि हो ॥ गु ॥ आ ॥
 भावै ॥ १८ ॥ भारीमाल मणीं तने पटै ॥ गु ॥ तृतीय तरुत
 ऋषराय हो ॥ गु ॥ आ ॥ जय वर पट तुय सूर्य सा ॥ गु ॥
 पंचम मधवा कहवाय हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ १९ ॥ माणक
 माणक सारिपा ॥ वर्तमान मच्छ स्थम्भ हो ॥ गु ॥
 आ ॥ नापै डाल सशिभला ॥ गु ॥ भविजन निरग्न अचम्भ
 हो ॥ गु ॥ आ ॥ भावै ॥ २० ॥ उंगनी सय पैसट बलि ॥ गु ॥
 मिगसर शिन पख पेख हो ॥ गु ॥ आ ॥ श्रावक गुनाव कहै

भलें ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष विशेख हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ भाव
येहवी भावना गुण वंता ॥ २१ ॥

॥ कलश ॥ गीतिकछन्द ॥

इमत्रण मनोरथ चिन्तवै जे भविक नित प्रतेजाण हीं ॥
अथ राशि कर्म विनास पावै पावै पद निरवाण हीं ॥ गणी
डालचन्द दिनंद सम सम गुरु तास पसाय हीं ॥ कहै श्रमणो-
पासक गुलावचन्द आनन्द हर्ष अयाय हीं ॥ १ ॥

इति तीनमनोरथम् ॥

॥ अथ दशविधि श्रावक आराधना ॥

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्तादिकमनु । पांचूं पद सुखकार ॥
मन प्रचर्ने काया करी । कहे तनु नमस्कार ॥ १ ॥
परिहृत सिद्ध साहु बलि । केवली भापित धर्म ॥
ये कयासं गुरणां प्रकी । पांमं निव सुख परम ॥ २ ॥
भावक वैपति आदिना । प्रत धारक हुवै जेह ॥
केवली भापित धर्म में । राखि नहीं सुदेह ॥ ३ ॥
विषय प्रत धर्म बलि । श्रीजिन मति में प्यार ॥
अथमयी प्रत चित्त नहीं । तावै नहीं सुखकार ॥ ४ ॥
कर्म योग की विषय मने । तावै दोष विहार ॥
अथमयी प्रत धर्म बलि । वगड करै अहीनार ॥ ५ ॥

मुनि आलोवै दश विधै । आराधन सुखकार ॥
 तिणपरः श्रावक पांडिक में । समकित व्रत अणाचार ॥६॥
 आराधनां जयाचार्य कृता जोड पुरातन जान ॥
 तिण अनुसारे में कहुं । मुणिजां चतुर मुजान ॥७॥

॥ ढाल प्रथम ॥

॥ वेदक जग विरला ॥ एदेशी ॥

॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ए आकंडी ॥

श्रीजिन धर्म सांहि जे रसिया ॥ सारै देव गुरु दिल वसिया-
 रे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ हाड बलि जे हाड नीं भीभी ॥
 धर्म थकी रहै भीजीरै ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ १ ॥ कुगुरु
 कुदेवनी बंछे न सेवा । धीर वीर गुन गेह्वारे ॥ आ ॥ धर्म
 में दृढ रहै नितमेवा ॥ आडिग हैं सुरगिर जेह्वारे ॥ आ ॥
 ॥ २ ॥ व्रत पचखाण सूधा जे पालै । निज आतम उज्जालैरे
 आ ॥ अतिक्रम व्यतिक्रम नांहि तुभालै । अतिचार अणाचार
 टालैरे ॥ आ ॥ ३ ॥ कर्म योग दोष लागै किवारे । तो डंड
 करै अङ्गीकारे ॥ आ ॥ विहुंटक आलोयणा लेवै । पक्खी
 दिन तो अवश मेवरे ॥ आ ॥ ४ ॥ चौमासी नहीं चूकै लि-
 गार । शुद्ध परिणाम सुविचाररे ॥ आ ॥ पर्व छुपच्छर आवै
 जिवारे ॥ पोषध अष्ट पोहर धारैरे ॥ आ ॥ ५ ॥ ध्यान करी
 शुभ भावना भावै । लखचोरासी योनि खमावैरे ॥ आ ॥ प्रमाद
 छांडी निज ध्येय ध्यावै । आराधक पद पावैरे ॥ आ ॥६॥ प्रत संता-
 रा फुन हलु करमीं । जगवल्लभ प्रिय धर्मारे ॥ आ ॥ व्रतालोयण
 किम करत उदार । आखुं ते अधिकाररे ॥ आ ॥ ७ ॥ सम-

कित रतन जतन थी राखै । न हुवै दुःख शिव सुख चाखैरे ॥
 आ ॥ जिम कर्दम थी पङ्कज न्यारो । तिम संसार मभारोरे ॥
 आ ॥ ८ ॥ लूखै परिणाम वसै घरनासा । राखै छांडगारी
 आचार ॥ आ ॥ इण भव परभव मै सुख पावै । ढाल प्रथम ये
 गावैरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम द्वार आलोचना । द्वितीय व्रत आरोप ॥
 तृतीय जीव समापना । शुद्ध मनथी तज कोप ॥ १ ॥
 चौथे पापज परहरै । पंचमें शरणां च्यार ॥
 छठे दुकृत निन्दवा । सप्तम सुकृत सार ॥ २ ॥
 भावै लुटी भावना । अष्टम द्वार मभार ॥
 नवमें अणुशणु चित धरै । दशम सुपर नवकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

(चौपाई नीदेशी)

सुशोभे एव प्रथम द्वार । त्रिणमें आलवणां अधिकार ॥
 ज्ञान दरशन चारित तपसार । षड्विक्कमें व्रत अणाचार ॥ १ ॥
 श्रीजिनवर वचन उदार । सांवा श्रद्धया न हुवै कियवार ॥
 तसु राखी नहिं प्रतीत । रुचिया न हुवै सुवदीत ॥ २ ॥
 अलस दीर्घ लघु सोलंतां । आलस करि अघे खोलंतां ॥
 एव हीन कदा हुवै सोय । लेह मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥ ३ ॥
 काल दिनस विह पाट प्रकार । भणवै जे ज्ञान आचार ॥
 दिनस रहित भणयो हुवै ज्ञान । तसु मिच्छामि दुक्कडं जाना ॥ ४ ॥

पाठ अर्थ विरुद्ध जे कीनो । मिथ्या अर्थ सांचो कहदीनो ॥
 कीधी ज्ञान आशातनां कोय । यावो मिच्छामि दोळ्डं मोय
 ॥ ५ ॥ भाजन विन ज्ञान भणायो । सांचो अर्थ भूटो दरशा-
 यो ॥ सूत्र विरुद्ध प्ररूपणां कीधी । लेऊं आलवणा तसु सी-
 धी ॥ ६ ॥ पाखण्डियांरा वचन जुहाया । सूत्रां में गपोडा व-
 ताया ॥ शङ्का पाहो हुवै दूजारै । लेऊं मिच्छामि दुळ्डं सार
 ॥ ७ ॥ व्याख्यानादिकरै म्हांय । सुगतांरै दीधी अंतराय ॥
 क्रोध वसथी विवध प्रकार । भाषा बोली विना विचार ॥ ८ ॥
 पांचज्ञान निन्दविया सोय । बलि गोपविया हुवै कोय ॥ नि-
 न्दा ज्ञानी तणीं करी जेह ॥ यावो मिच्छामि दोळ्डं तेह ॥ ९ ॥
 इम दरशननां अतिचार । आलवणा करुं तसु सार ॥ आठ
 गुण जे सम्यक् प्रकार । धारया न हुवै विनय विचार ॥ १० ॥
 कुगुरु कु देगारी तांण । प्रशंसा करी हुवै जांग ॥ बलि सास-
 ता परिचा में रक्त । करी हुवै खांरी भक्त ॥ ११ ॥ जीवाजीव
 अजीव नें जीव । धर्म अधर्माधर्म अतीव ॥ साहु असाहु साहु
 नें असाध । मार्ग कुमार्ग इम हिज लाध ॥ १२ ॥ मोक्ष घाला नें
 अमोक्ष गयो । हांसि स्वपरवसधी कहो । ये सर्व बोलांरो
 सोय । यावो मिच्छामि दुळ्डं मोय ॥ १३ ॥ सूत्र साधु अने
 छकाय । फुन सिद्ध संसारी म्हांय ॥ शङ्का राखी हुवै किण
 वार । होज्यो मिच्छामि दोळ्डं सार ॥ १४ ॥ गहन वातां
 आगम में जाई । सांपल नें लेखो लगाई । दिपरीत तपभक्तसम-
 भाई । लेऊं मिच्छामि दुळ्डं जाई ॥ १५ ॥ कला साधू साध्वी
 जान । येकम पूनम चंदसमान ॥ अनन्त सुख फेर संजम मांहि ।
 खांमै शङ्का राखी हुवै कांहि ॥ १६ ॥ किञ्चित दोष लगावता
 देखी । संजम श्रद्धयो न हुवै धरिसेखी ॥ पर पूठ निन्दा करी कोय

पावो मिच्छामि दुक्कडं मोय ॥ १७ ॥ करडी प्रकृती किणीरी
 जंगी । चारित में गड्डा आंगी ॥ थयो गण अपराठां किंवार ।
 नेजं मिच्छामि दुक्कडं धार ॥ १८ ॥ गणिनांथ नां अवगुण
 गाया । बलि गणधी कलुप भाव आया ॥ सुविनीतरा भाव
 फिरायो । तलु मिच्छामि दुक्कडं थायो ॥ १९ ॥ देव गुरु धर्म उदार ।
 देश सर्व शंका दिल धार ॥ तेहलुं मिच्छामि दुक्कडं सार । हिव
 शंका न राखुं लिगार ॥ २० ॥ कंखा अनमति नीं बंछा जानी
 बाधि कुरावंत बुगल ध्यानी ॥ तलु प्रशंसा सेवा कीध । थावो
 मिच्छामि दुक्कडं प्रसिद्ध ॥ २१ ॥ विदगंछा संदेह फल मांहीं ।
 पोतै राजी सौरांमें रखाही ॥ तेहलुं त्रिविध २ मोय । थावो
 मिच्छामि दुक्कडं तोय ॥ २२ ॥ जिन छाज्ञा में धर्म न जाण्यो ।
 भासा बाहर धर्म पत्ताण्यो ॥ हिंसा कीयां धर्म कह्यो कोय ।
 पावो मिच्छामि दुक्कडं माय ॥ २३ ॥ पंच प्रमेष्टी नां गुन गाऊं ।
 तांची अलं दूजा में अद्दाऊ ॥ म्हारे शिव सुखनी हृद च्हाय ।
 गिदां जादण रो कायें उपाय ॥ २४ ॥ मोक्ष कर्म पतलो नित
 वारण्युं । भवसागर पार उतरण्युं । दूजी ढाल में प्रथम द्वार । बलि
 मायें बहु विकार ॥ २५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ढाल ॥

सत्य कोई मत राखज्यो ॥ एदेशी ॥

ब्रतालोयण मैं करूं । शुद्ध परिणामें होई रे ॥ भोला
 बालक नीपैरै । म्हांरी आतमां लेऊं धाई रे ॥ ब्रता ॥ १ ॥
 त्रश जीव गाढ़ै बांधणैं । बांध्या हुवै किण दीसो रे ॥ गाढ़्या-
 वे घालीया । अतिभार घाल्या करि रीसो रे ॥ थावो मिच्छा-
 मि दुक्कडं तेहनूं ॥ २ ॥ चामडी छेदी शस्त्र थी । भात पाणी-
 नों विछोहो रे ॥ विन अपराधे आकूटी । हणवा बुद्धि करी
 हणयां सोहो रे ॥ थावो ॥ ३ ॥ आल भूँठा किण जीव रै ।
 दिया हुवै किण वारो रे । छानी वात प्रकाश नैं । कियो हुवै
 किणरो विगारो रे ॥ थावो ॥ ४ ॥ मृषा उपदेश दिया बाल ।
 लेख कूडा लिख्या ताहो रे ॥ राज पंचा मुख आगनै । भूँठी
 साख भरायो रे ॥ थावो ॥ ५ ॥ थांपण मृषा ज्यो किया ।
 इत्यादि मृषा बायो रे ॥ हान्सि कोतुहल थी कदा । फुन लोभ
 तणैं बस आयो रे ॥ थावो ॥ ६ ॥ चोर तणैं पैं चोरियां ।
 तालो तोड वदीतो ॥ परकूंचियादि कारणैं । चोर सुं करि हुवै
 प्रीतो ॥ थावो ॥ ७ ॥ वस्तु चोरी नीं लेई हुवै । बलि साभ
 दियां किणवारो रे ॥ अदल बदल कपटै करी ॥ कियो राज
 विरुद्ध व्यापारो रे ॥ थावो ॥ ८ ॥ चांखी वस्तु दिखाय नैं ।
 वस्तु निकंभी आपी रे ॥ लोभ तणैं बस आयनैं । खोटा नांप-
 णां नांपी रे ॥ था ॥ ९ ॥ देव मनुष्य तिर्यंच थी । देवाङ्गना
 सङ्ग होई रे ॥ परस्त्री अनें तिर्यंचणीं । मांठी नजरां जोई रे ॥
 ॥ थावो ॥ १० ॥ काल थोडानीं राखी थकी । कुशील मेयो

रक्त होईरे ॥ हस्तकम्मादिक जोगसूं । पाप लागो हुवै कोईरे
 घावो ॥ ११ ॥ अपरिग्रही वेश्यां आदिषु । मिथुनादिक अमि
 लाखीरे ॥ तीव्र परिणामें सेवियां । चतु कुशीलें भांकीरे ॥
 ॥ घावो ॥ १२ ॥ केला अनेक प्रकारसूं । स्त्रियादिकसूं भावी
 रे । नांता जुडाया परतणां । परनैं हर्षधरी परणावीरे ॥ घावो ॥
 ॥ १३ ॥ खेतु वथु द्विरण्य सुवर्णने । धन धानादिक म्हांयोरे
 कुम्भीधातु द्वि चोपद घणां । मर्षादि उपरान्त वथापोरे । घावो
 ॥ १४ ॥ दाल भलीये तीसरी ॥ कदि धुर द्वार मझारारे ॥ आगे
 विस्तार छे बलि घणूं । सांभलतां सुखकारारे ॥ व्रतालोपण भैं
 कर्म ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

गुणवत् छै त्रण म्हांपैरै । यथा शक्ति प्रमाण ।
 दोषनागो हूँतहैं । आनवणां तसु जांण ॥ १ ॥
 चिह्नं शिखा चोटी समां । आदरिया गुरुपास ।
 दूषण लाग्यो किय सैं । आन वणा कहतास ॥ २ ॥
 दम्बोलीनां पान जिप । वारम्बार संभाल ॥
 कारतां शातस उजला । प्रगट पाय गुणमाल ॥ ३ ॥

॥ हल ॥

गोलाभर्म मैं क्यों भक्ष्यो । क्यों तुज झालज ऊठीरे । एदेशी ।
 दिशि मर्माद शक्ती रुद्रा । आग जाय पाप कीनोरे ॥ ऊंची नीची
 दिशो दिशामभे । कम देसी गिर लीनारे ॥ नेऊ मिच्छामि
 रजस भेद ॥ १ ॥ संदेह नाहि नवागति करी । आधा

पाछा पयदीधारे ॥ विनराखी भूमी तणों । आहार कीयो
 पाणी पीधारे ॥ २ ॥ सांचित अचित द्रव भोगव्या । बलि
 गहणां बद्ध सवायोरे ॥ एक अनेक बेलां कोई । अधिको भोगमें
 आयोरे ॥ ले ॥ ३ ॥ पंदर कर्मादान सेदिया बलि अनेरा पांसोरे ।
 मन वचन कायाकरी । अनुयोद्या हूवै जासोरे ॥ ले ॥ ४ ॥ कथा
 करी कंदूपनी । थांड कुचेष्टा कीधीर । विन अर्थ पापारंभ
 किया । शस्त्र तीखा करया सीधारे ॥ ५ ॥ सामायकमै किण समें ।
 हानिस कोतुहल अयायोरे । विनजोयां विन पूंजीयां । तनचंचलतां
 सवायो रे ॥ ले ॥ ६ ॥ आयां विना पारी हूवै । भाषासाव-
 झ बोलीरे ॥ संसारिक कारज मझ । मननीं लगाई ओलीरे
 ॥ ले ॥ ७ ॥ सासाधक मर्यादयी । ओछी करी हूवै त्हायोरे ॥
 देव गुरु धर्म तीननां । अविनयामैं चितल्यायोरे ॥ ले ॥ ८ ॥
 देशावगासी जे द्रतछै । ते नहीं सेयो भेवायोरे वस्तु आमी
 सांमी बारली । आपो पुदगल शब्दै जणायोरे ॥ ले ॥ ९ ॥
 पोषध करतो किणसमैं । सेया सावध कामारे ॥ विन जोयां
 विन पूंजीयां । फिरिया आमानें सामारे ले ॥ १० ॥ आचार
 पास अनें भूमिका । उपग्रण सेझा संधारेरे ॥ सुपाडि लेहणा
 न कीधी हूवै । निन्दा विकथा थी प्यारोरे ले ॥ ११ ॥ शुद्ध
 साधु निग्रथनैं । अप्रिय वचन जे भाख्योरे ॥ हेला निन्दा करि
 तेहनीं । आल अछुतो दाख्योरे ॥ ले ॥ १२ ॥ चोदह प्रकार
 नू दानजो । असूझता दिक दीधारे ॥ स्व पर वस किणभ-
 वमरे । साधुरैं काजकीधारे ॥ ले ॥ १३ ॥ मेल भासु वस्तु
 मचितप । बलि मचितथी दावयोरे ॥ अणगमतो आहार साधु
 नैं । मांडाणी करि नांख्योरे ॥ ले ॥ १४ ॥ भांगें बैठ मुनि
 राजनीं । भावना नहीं भाईरे । दान आलस थी नहिं दियो

शुद्ध मिलयां जोगवाईरे ॥ ले ॥ १५ ॥ ये द्वादश व्रतां तर्णी ॥
 आलोचना करी सीधीरे ॥ जिन सिद्ध साधु साखधी ॥ आत-
 म निरमल कीधीरे ॥ ले ॥ १६ ॥ तप आचार द्वादश विपै ।
 अभिग्रह त्याग जनेकोरे ॥ तछु अनाचार सेव्यो हूँ । बल-
 दीय गोप्यो विशेषोरे ॥ ले ॥ १७ ॥ चौथी ढाल कहि भली ।
 कथा पहनो ये द्वारोरे ॥ कहतां सुगतां सुखलहै । आनन्द दर्पणपा-
 रोर ॥ प्रथम द्वार इम जाणज्यो ॥ १८ ॥ इति प्रथम द्वार

॥ कलस ॥

इम प्रथम द्वार सुधार आतम व्रत आनवणा जे कही ॥
 इंगरीत जे श्रावक सुद्धातम, कियां आराधक सही ॥ लाग्यो
 हूँ कोई दोष तेहनुं, गुरु मुख प्रायश्चित लही ॥ तप आनि सु-
 कर्म काष्ट जाली, पालिये व्रत ऊमही ॥ १ ॥

॥ अथ दुसरो सन्यस्यक व्रतारोपणद्वार ॥

॥ दोहा ॥

सन्नतपी ग्रहस्थाश्रमै । सनेक पाप उत्पन्न ।
 शारंग परिग्रह सर्वपा । तजरयुं ते दिन धन ॥ १ ॥
 पुणें सुगुण समीप में । समकित व्रत लिया तेह ।
 ते श्रवतां पुन लचन । सिद्ध साधु साहेह ॥ २ ॥

॥ दाल अरिहन्त मोटकाये ॥

ए ॥ १ ॥ ते कर्मरूप अरिजण हणयां ए । रोक्क्या छे पापनां
 द्वारकै ॥ रागद्वेष क्षय किया ए । निजगुन प्रगट उदारकै ॥
 ॥ स ॥ २ ॥ लोकालोकनीं वस्तुनां ए । जाण रक्षा सब भाव
 कै । जिन नांम कर्मथी ए ॥ अतिशय अधिक अथायकै । गावूं
 गुन जेहनां ए ॥ ३ ॥ नरसुर इन्द्रादिक बहू ए । नरपाति सारै
 सेवकै ॥ कहूं गुन किहां लगै ए । मोटा प्रभू देवापति देवकै ॥
 ॥ ग ॥ ४ ॥ चौतीश अतिशय ओपता ए । पैतीस बाणीं
 वदीतकै ॥ द्वादश गुन भला ए । अष्टादश दोष रहितकै ॥ ग ॥
 ॥ ५ ॥ शुद्ध साधु गुरु म्हांयरै ए । पंच समिति हुसियारकै ॥
 महाव्रत पंच पालता ए । तीन गुप्ति धरप्यारकै ॥ यहवा गुरु
 म्हांयरै ए ॥ ६ ॥ च्यार कषाय निवारनै ए । पालैछे तेरा बो-
 लकै ॥ परिसह सहनमें ए । सुर गिर जेम अडोलकै ॥ यहवा ॥
 ॥ ७ ॥ सतरे विध संजम धरा ए । असंजम सतरे टारकै ॥
 बावन अगाचार तजै ए । दोष बयाली परिहारकै ॥ यहवा
 गुरु म्हांयरै ए ॥ ८ ॥ धर्म जिनेश्वर भाषियो ए । अहिंसा
 सुखकारकै ॥ बलि जिन अंणमें ए । न होवै पाप लिगारकै ॥
 धर्म शुद्ध आदरुं ए ॥ ९ ॥ बलि दुर्गाति पड़ितां जीवनै ए ।
 धारी राख ते धर्मकै ॥ साधु आवकनु भलो ए । पाल्यां शिव
 सुख परमकै ॥ धर्म ॥ १० ॥ व्रतमें धर्म जाणुं खरो ए । अव्रत
 अनर्थ मूलकै ॥ दया अनुकम्पा भलो ए । धर्म थी छे अनुकूल
 कै ॥ ११ ॥ करुणा मोह स्नेहनीं ए । कियां पाप सुजाणकै ॥
 अव्रत सेवावियो ए । अधर्म कह्यो जगभाणकै ॥ धर्म ॥ १२ ॥
 कुगुरु कुदेव कुधर्मनै ए । दोसरज्ज ईश्वारकै ॥ यथासाक्ति
 आदरुं ए । व्रत पचखाण उदारकै ॥ धर्म ॥ १३ ॥ पहिलो
 व्रत व्रम जीवनै ए । आकूटी नै जाणकै ॥ हणवा बुद्धि करी

ए । मारण मरावण पचखाणकै ॥ व्रत इस आदरुं ए ॥ १४ ॥
 राज डंडे लोक भांडवै ए । इसो मोटो झूट परिहारकै ॥ दूजो
 व्रत जाणिये ए । करण जोग सुविचारकै ॥ व्रत ॥ १५ ॥
 तालो तोडि परकुज्जीसुं ए । परधन चोरण नेमकै ॥ करण
 जोगे करी ए । तीजोव्रत करै येमकै ॥ व्रत ॥ १६ ॥ देव देवी
 तिर्यंचयी ए । परस्त्री वेश्यां आदिकै ॥ मनुष्य मनुष्यणी ए ।
 चौधो मिथुन मर्यादकै ॥ व्रत ॥ १७ ॥ पंचमें परिग्रहानूं करुं
 ए । यथा सक्ति प्रमाणकै । नव विध जे कह्यो ए ॥ धन धानादिक
 जाणकै ॥ व्रत ॥ १८ ॥ जंची नींची तिरछी दिशाए । जाव-
 ण राखी जेहकै ॥ उपरान्त जायनें ए । पंच आश्रव पचखेहकै
 ॥ व्रत ॥ १९ ॥ उपभोगनें परिभोगमें ए । आवै छै छब्बीस
 बोलकै ॥ त्याग किया तिके ए । सातमूं व्रत अमोलकै ॥ व्रत ॥
 २० ॥ साठमें अनर्घ डंडनां ए । त्याग करै जावज्जीवकै ॥
 प्यार प्रकारनां ए । कछा पाप अतीवकै ॥ व्रत ॥ २१ ॥
 सामाएक नदमें दारै ए । दशमें संवर जानकै ॥ पोसो व्रत ज्ञा-
 रसुं ए । दारसुं साधानें दे दानकै ॥ व्रत ॥ २२ ॥ दाल भली
 ये पांइसी ए । आख्यो छै दूजो द्वारकै ॥ श्रावक शुभ भावसुं
 ए । साराध धर प्यारकै ॥ व्रत ॥ २३ ॥

॥ कलस ॥

॥ अथ तीजो खमावन द्वार ॥

॥ दोहा ॥

व्रतधारक भवि शुद्धपन । खमत खामनां सार ॥ निरमल
आतम किमकरै । आखुंते अधिकार ॥ १ ॥ सरल पणै वचका-
यसुं । मनपी कपट निवार । नमन भाव दिल आशिनै ॥ खमा-
विये तजहार ॥ २ ॥

॥ ढाल छट्टी ॥

संभव साहिव समरिये ॥ एदेशी ॥

सात लाख योनि महीधरा ॥ सातलाख अप्पपांणीनी जो
गिके । सातलाख तेऊ अग्निनी । । वायू पिण इतनीं कहीगो-
गिके । खमत खामनां तेहथी ॥ १ ॥ येक जीव इक तनु
महीं । तेह प्रत्येक वनस्पति कायकै ॥ दशलख योनी जिन
कही । चौदः लख साधारण तायकै ॥ खमत ॥ २ ॥ जीव
अनन्ता येकसा । येक शरीरमें रखा तिण न्यायकै ॥ लीलण
फूलण आदिमें । जमीकंद अंकुरा मांयकै ॥ खमत ॥ ३ ॥
सूक्ष्म वादर विहुं परै । क्रोध भाव आणया हुवै कोयकै ॥
त्रिविध २ म्हांयै । मिच्छामि दुक्कडं छै अवलोचकै ॥ खमत ॥
॥ ४ ॥ वादर पांचू कायनै । हणी हणार्ई निजपर काजकै ॥
अनुषोदी हणतां प्रते । ते तिहुं जोग आलोवू आजकै ॥ खमत ।
॥ ५ ॥ लट गिनोला बेद्री । कीडादिक तेद्री नां जीवकै ॥
खटमल प्रमुख विणासिया । कलुष भाव करि पाडी रीवकै ॥

॥ स्वमत ॥ ६ ॥ मांखी मांछर चौरिन्द्री । विच्छु प्रमुख हगया
हुवै सोयकै ॥ ये तिहूं बेछेन्द्री तणीं । योनी लख जाणीं दोय
दोयकै ॥ स्वमत ॥ ७ ॥ रत्नप्रभाः जाव तमतमा । सात नरक
में नेरीया जेहकै ॥ च्यार लाख योनि तेहनीं । तास खमावूं
झरल पणोहकै ॥ स्वमत ॥ ८ ॥ च्यार प्रकार देवता । भुवन
पती व्यन्तर लुविचारकै ॥ योतपी झने विमानका । चिहू लख
योनि गणीं अधिकारकै ॥ स्वमत ॥ ९ ॥ द्वेष भाव किणु श्रव
शरै । झारया हुवै बलि कलुप परिणामकै । तास खमावूं भली
परै ॥ स्वमत ॥ १० ॥ तुयं देवा अभिरामकै ॥ स्वमत ॥ १० ॥ तुयं
लाख तिर्यचनीं । जलचरमें मच्छादिक जाणकै ॥ थलचर
पलपे चालता । हातो अस्वादिक बहु प्राणकै ॥ स्वमत ॥ ११ ॥
उरपर उर सें गति करै । शर्पादिक बलि विवध प्रकारकै ॥
भुजपर उन्दर आदि हैं । तासु खमावूं तज चित खारकै ॥ स्वमत
॥ १२ ॥ गमन आकाश करै तसु । खचर पंखी कहिजे जासकै ।
टांग कौतुहल दिक करी । हगया हगया हुवै बलि तासकै ॥
॥ स्वमत ॥ १३ ॥ पांच भेद तिर्यच ये । मन विमना इन्द्रिय धर
पांचकै ॥ सर्व प्रते तीन जोग सैं । स्वमत खामनां करूं तज
खासकै ॥ स्वमत ॥ १४ ॥ चौदह लख योनि मनुष्यनीं । सूत्र
विषे भापी जिनरायकै ॥ तसु मल मूत्रादिक महीं । कर्मम
मल सपयै जासकै ॥ स्वमत ॥ १५ ॥ ये चोरासी लख जाणीयो
जीवा जोगि जे रूपजग टामकै ॥ बारम्बार ते सब प्रते । स्व-
मत खामना तैं अभिरामकै ॥ स्वमत ॥ १६ ॥ देव अरिहन्त जे
तेहनीं । सनत चौदीसी हई भर्त जेहकै ॥ इस दिह ऐश्वर्य
॥ स्वमत ॥ १७ ॥ विनय

करी कर जोड़ने । मन शुद्ध थी खमाज्यो अपराधकै ॥ भव भव
 शरणों तुम तणों । तिणमुं धावै परम समाधिकै ॥ खमत ॥
 ॥ १८ ॥ दूजैपद सिद्ध सुख करू । पूर्व प्रयोगे गति परिणा-
 मकै ॥ सर्वारथ सिद्ध थी अछै । द्वादश योजन ईसी प्रभाः
 नांपकै ॥ खमत ॥ १९ ॥ ते थी ऊर्द्ध लोकान्तकै । गाऊं
 इकरै छट्टै भागकै ॥ अनन्त गुणी तुम्हें जयी वस्या । हिव
 पायो में तुम तणों मागकै ॥ खमत ॥ २० ॥ जे कोई जाण
 अजाणतां । आशातनां हुई तासु खमायकै ॥ आवण तिहां मन
 लग रह्यो । तुम सरियो तुम जपियां धायकै ॥ खमत ॥ २१ ॥
 आचारज तजै पदै । सम्यक्त चरण तणां दातारकै ॥ शुद्ध
 प्ररुपण जहनीं । महा उपगारी महा सुखकारकै ॥ खमत ॥ २२ ॥
 उवकाया गण वस्सलू । भणें भणावै निरमल ज्ञानकै ॥ गणी
 आणां न उलंघता । पालै पंच महाव्रत मानकै ॥ खमत ॥ २३ ॥
 दाता समकित चणरा । देश व्रत पालू तुम जोगकै ॥ जे कोई
 जाण अजाणतां । आशातना हुई विन उपयोगकै ॥ खमत ॥ २४ ॥
 शुद्ध साधु अढी द्वीपमें । पंचयाम नव कल्प विहारकै ॥ निर-
 सोभी निर लालची । जाचै दोष वयांली टारकै ॥ खमत ॥ २५ ॥
 भित्तूगणमें महा सुनी । साध्वियां सहु गुण भंडारकै ॥ अमिय
 बच तसु द्रप थको । कियो अविनय खमाऊं सारकै ॥ खमत ॥
 ॥ २६ ॥ गुण विहुणा गण बाहिरा । टालो कर बलि अष्टा
 चारकै ॥ तासु खमावूं भली परै । किण अवशरि कियो कलुप
 विचारकै ॥ खमत ॥ २७ ॥ मात पिता सुतनें धुया । बलितसु
 अंगज थी किण कालकै ॥ बान्धव न्याती गोती सें । मित्र अ-
 मित्र सहु समभालकै ॥ खमत ॥ २८ ॥ नोकर चाकरदास थी

दामीनें बलि तसु भंग जातकै ॥ जो कोई जाण अजाणतां ।
 स्व पर वस वच कटु आख्यातकै ॥ खमत ॥ २६ ॥ क्रोध
 मान माया करी । लाभकी दिया अछूता आलकै ॥ सहु सं-
 सारी जीवसें । खमत खामना अधिक रसालकै ॥ खमत ॥ २७ ॥
 निज स्त्री पुत्र पुत्रीनें । हित शिन्हा देतां किण वारकै ॥ कर-
 दा वचन कछा हुवै । कारज घरनां करावण सारकै ॥ खमत ॥
 ॥ २८ ॥ नाम लेईनें जुवा जुवा । सर्व भणीं इम खमत खमा-
 यकै ॥ मन वच काया इं करी । दिलमें मच्छर भाव मिटायकै
 ॥ खमत ॥ २९ ॥ धर्म जिनेश्वर भापियो । पायो इण भवमें
 छुविमालकै ॥ विघ्न मिटै संकट कटै । तास प्रसादै मंगल मा-
 लकै ॥ खमत खामना इम करै ॥ ३० ॥ तीजें द्वार आराधना ।
 खमाविय कही छट्टी ढालकै ॥ आराधक पदे पाविय । जिन
 वच रहामां नयण निहालकै ॥ खमत खामना इम करै ॥ ३१ ॥ इति

॥ कलश ॥

इम खमत खामन अतहि पावन, विमल भावन नित धरे ।
 एतु मय स्वपाय सुगुण सुगुणवि, आत्म हित चित मुख करै ॥
 श्री जिनेश्वर महाशान भव दाधि, पाज काज सेवां सरै ।
 ॥ ३२ ॥ श्रीविक्रम गुनार सु भाव गुण युत भनही आनन्द निजघरे ॥

॥ अथ चतुर्थ द्वारम् ॥

॥ दोहा ॥

बोले हारे लोहवा, जहादह जे पार ।
 पास दया हित सुखलो, तिसम् पिर चित दास ॥ ३३ ॥

॥ ढाल ॥

इण अवसर धनजो आवै तथा सेव सुनी नीं कीजै । सेवा-
थी बंछत सीझैजी ॥ एदेशी ॥

मतकर तूं श्रावक पापं । जिन धर्ममें धिर चित थापंजी ॥
॥ म ॥ १ ॥ पहलो अघ प्राणातिपातं । दूजो अघ मृपा वा-
तंजी ॥ म ॥ २ ॥ तीजो अघ अदत्ता दानं । चोथो अघ मिथुन
सुजानंजी ॥ म ॥ ३ ॥ पंचम अघ जे धन धानं । छटो अघ
क्रोध बखानंजी ॥ म ॥ ४ ॥ सातमूं अघ छै अभिमानं । अष्टम
माया कपट तोफानंजी ॥ म ॥ ५ ॥ नवमूं लोभ निवारो ।
दशम राग परिहारोजी ॥ म ॥ ६ ॥ इज्ञारमुं द्वेष न धरिवो ।
वारमुं कलह न करिवोजी ॥ म ॥ ७ ॥ अवारुपान न दीजै ।
पर परिवाद न कीजैजी ॥ म ॥ ८ ॥ संजमयी अरति ल्यावै ।
असंजम रति मन भावैजी ॥ म ॥ ९ ॥ ये पाप सोलमूं ठाडो ।
रति अरति दोनूं छांडोजी ॥ म ॥ १० ॥ कपट सहित झूठ बोलै ।
संतरमुं माया मृपा ओलैजी ॥ म ॥ ११ ॥ अठारमूं अघ अति
भारी । मिथ्या दर्शन सत्य विचारीजी ॥ म ॥ १२ ॥ ये पाप
अठारा जाणीं । त्यानें परहरै उत्तम प्राणीजी ॥ म ॥ १३ ॥
छांडणरी मनसा राखै । ते शिव सुख जलदी चाखैजी ॥ म ॥
॥ १४ ॥ चोथे द्वार इम भावै । अंत समें पाप बोलैजी ॥
॥ म ॥ १५ ॥

॥ कलश ॥

चोथे द्वार अराधनां कह्यो । पापनें बोलैराख्यो ॥ कियां
पाप अति दुःख परभवे । इम जीवनें समझायवो ॥ धन संत

तंत महंत नीका । पापनीं रजदालता ॥ निज आतम सम पर
प्राणि जाणीं । पंच महाव्रत पालता ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ पंचमूर् शरणा द्वार ॥

॥ दोहा ॥

पंचम द्वारे धारवा, मनमें शरणां च्यार ।
अरिहंत शिद्ध साहु बलि, जिन भाषित धर्म सार ॥ १ ॥
शरणां छी सुख संपजै, दुःख दारिद्र पुलाय ।
दिग्ग मिटै संकट कटै, मन वान्छित मिलजाय ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

मभू वासु पुज्य भजलै प्राणीं ॥ एदेशी ॥

प्रथम शरणा अरिहन्त देवा । त्वारी सुरतर सहु सारै से-
वा ॥ शरणा कयलनी बलिहारी । सुभ शरण अरिहंत तणूं
धारी ॥ १ ॥ जे कर्म ग्य हैरी मारवा । लाहे केवल भविजन
ने लाग्या । ते च्यार तीरणनां करतारी ॥ सु ॥ २ ॥ फिटक
मिरामिन पै देवी । साहु श्रावक धर्मनां उपदेशी । अहिंसा
पति पावकारी ॥ सु ॥ ३ ॥ तह साशोक थलो स्होवै । अ-
निरम हठ कमर नहि । सांभलनी छिन्न भारी ॥ सु ॥ ४ ॥
रु ॥ सुखी ने भगवतार । पुण्य हृष्टी सुमेधित अनुकार । सुर
पति सांभलनी प्यारी ॥ सु ॥ ५ ॥ जलन्त ज्ञान दर्शन थारै ।
रु ॥ रुत शरण करी थारै । हादस मुन दे हितकारी ॥ सु ॥
॥ ६ ॥ दोष महादुख दूर दियत । रात डेस अरि भति जीत

लिया । बीत राम प्रभू गुणधारी ॥ मु ॥ ७ ॥ आठ महा प्र-
 तिहारज छाजै । बांणी गुण पण्थीश करी गाजै । चौतीस अति-
 शय सुविचारी ॥ मु ॥ ८ ॥ त्रिगद्गा विच प्रभूजी सोहवै ।
 चिहुं मुख चिहुं दिशमें मन रहोवै । समोवसरख रचनां भारी ॥
 ॥ मु ॥ ९ ॥ जे अष्ट कर्म नू नांश करी । येक समय मांहि
 शिव रमण वरी । थया सिद्ध निरंजन अविकारी ॥ मु ॥ १० ॥
 अजोगी अभोगी अविनासी । अनन्त आत्मिक सुख सुविला-
 सी ॥ जिके आवागमन दियो टारी । मुक्त सरणों सिद्ध तणों
 भारी ॥ ११ ॥ निवड कठिन जे कर्म दही । बलि ज्ञान कृपा
 करि मुक्ति लही । अठ गुण अतिशय येकतीस खारी ॥ मु ॥
 ॥ १२ ॥ तीन काल तणां सुर सुख लहिये । तसु अनन्त
 बारंगणा फुन दईये । तेहथी अनन्त गुणों सुख हैं सारी ॥ मु ॥
 ॥ १३ ॥ तीजो शरणों मन भावो । साधू साध्वियानों मुक्त
 थावो ॥ पंच सुमति महा व्रतधारी । मुक्त शरणों साधां तणों
 भारी ॥ १४ ॥ बयांलीस दोष तज आहार लेवै । हित शि-
 क्षा भविजन नें देवै । पालै संजम सतैर प्रकारी ॥ मु ॥ १५ ॥
 मांडलानां पांज दोष टालै । तिके राव रंक सहु सम भालै ।
 विषय इन्द्रियां नां परेहारी ॥ मु ॥ १६ ॥ दुष्ट अस्व मन जीत
 लियो । बलि केंद्रप मनथी दूर कियो । आप तैर पर नें तारी
 ॥ मु ॥ १७ ॥ निन्दा प्रशंसा में सम भावै । राम द्वेष किणही
 पर नहिं ल्यावै ॥ भोग तजी थया ब्रह्मचारी ॥ मु ॥ १८ ॥
 दुःख नरक निगोद थकी डरता । तजी स्नेह नव कल्प विहार
 करता । ते सुविनीत गुरु आज्ञा कारी ॥ मु ॥ १९ ॥ केषल
 ज्ञानी जे धर्म कह्यो । तेही संवर निरजरा मांहि रह्यो ॥ कर्म
 कटै नें रुकै सारी । मुक्त शरणों धर्म तणों भारी ॥ २० ॥

जिन भाशा मांहि धर्म भ्रखै । जिके दुरगति पडतां नें धारि
रखै । व्रत धर्म भ्रमरत दुःख कारी ॥ सु ॥ २१ ॥ दान सुपात्र
सुख प्रगट । पाल्यां संजम तपथी पाप कटै । भव भ्रमण मिटै
बरै शिव नारी ॥ सु ॥ २२ ॥ इम छपार शरणां जे नित ध्यावै ।
रोग सोय जिणारे नहिं धावै । ये ढाल भाठमी जयकारी ॥
॥ सु ॥ २३ ॥

॥ कलश ॥

जयकार मार उदार शरणां, विघ्नहरणा ये कहा । मुख
कार पर उपगारि श्रावक तगै मनमें बस रहा ॥ अघटार खार
निवार अवि तं धार चिहुं विध शरणकों । संसार गार असार
पारावार भवदधि तरणकों ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ छट्टो दुकृत निन्दा द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दुकृतनीं निन्दा करै, छट्टा द्वार विपेह ।
दुकर्म किया करादिया, ते सहु पाद करेह ॥ १ ॥
बलि पुकारण जीवनें, राग द्वेष बस भांण ।
सोय बसे अनर्थ किया, निन्दा तेहनीं जांण ॥ २ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

सीतां भाँरे घर राग ॥ ददेशी ॥

भद भद भमियो निज गुण भमियो, रमियो मिथ्या मांहि ।
सुख न रमियो मन नहिं रमियो । मन बच निन्दुं ताहि । दुकृत

निन्दूधरि अहसाद ॥ १ ॥ खोटा देव खोटा गुरु सेव्या । बलि
 धारयो कूधर्म । वार्त्ता अढम्बर देखी तेहनुं नमियो शर्माशर्म ॥
 ॥ दुःकृत ॥ २ ॥ अन्य बलि कृत शास्त्र वांचिया अद्धा विरुद्ध वि
 चार । अशुद्ध प्ररूपन करी दुसंगे । ते निन्दू धर प्यार ॥ दुःकृत ॥
 ३ ॥ हिन्सा मांहीं धर्म जाणियो । नगिरयो दोष लिगार ॥
 भागल अष्टरी संगत सेती आरंभ किया अपार ॥ दुःकृत ॥ ४ ॥
 शुद्ध साधु नां गण बी बाहर । निकलिया जे तास ॥ धर्म जाण
 अशणां दिक्कीधो ॥ बलि नमस्कार कियो जास ॥ दुःकृत ॥ ५ ॥
 दानं कुपात्रां नै धर्म जाणीं । दियो हुवै जे कोय ॥ इच्छा असंज-
 म जीतवनीं । थावो मिच्छामि दुक्कडंमोय ॥ दुःकृत ॥ ६ ॥ स्नेहराग
 अनुकंपाकरि के । जिन धर्म जाणयो होय ॥ अव्रत सेतां अनै
 सेवातां । अर्धो धर्म सु सोय ॥ दुःकृत ॥ ७ ॥ वीतरागनू निस्ने-
 ही मारग । ठांको हुवै किणवार ॥ कुमारगनै प्रगट जकीधो ।
 ते निन्दू धर प्यार ॥ दुःकृत ॥ ८ ॥ इंगालिक कम्मादिक पंद-
 रा । सेव्या कम्मादान ॥ निज पर अर्थ कुकारज कीधा । ली-
 धा अदत्ता दान ॥ दुःकृत ॥ ९ ॥ आलस करी उघाडा रा-
 ख्या । घृत आदि रशनां ठाम ॥ धाणीं प्रमुख में जंतु पीला-
 व्या । किया निन्दनीक जे काम ॥ दुःकृत ॥ १० ॥ खान
 खुदाई भूमि फडाई । ढोल्या अणगल नीर ॥ यंत्र घटी ऊपल
 मूशल दिक । करतां नहि जाणीं पर पीर ॥ दुःकृत ॥ ११ ॥
 महा आरंभ करि जीव विराध्या । बोल्या मृवावाद ॥ पर दाह
 दीधी चोरी कीधी । सेव्या मिथुन उनमाद ॥ दुःकृत ॥ १२ ॥
 परिग्रहा मांहि लिप्त रह्यो चित । कीधो क्रोध विशेख ॥ मान
 मायाने लोभयकी में । किया रागनें द्वेख ॥ दुःकृत ॥ १३ ॥
 दुष्ट परिणामां त्रशजीवाने । पांणी मांहि डवोय ॥ हांसि को-

तुहल करि मन हरख्यो । राख्या थापण मोसा सोय ॥ दुकृत
 ॥ १४ ॥ कसाई प्रमुखरा भव में मारया । तस प्राणी दिन रात ॥
 भाडै चलाव्या सगट अंटादिक । लालच धी करी घात ॥ दुकृत
 ॥ १५ ॥ न्यायालय में हाकम होके । किया अधिक अन्या-
 य ॥ पक्षपात धर करि पंचायत । कुढी साख भराय ॥ दुकृत ॥
 ॥ १६ ॥ हाव पकाव्या कुंभारनें भन । तैली भव में तेल ॥
 माली भव में वृक्ष विगास्या । रांगण भव रेलापेल ॥ दुकृत ॥
 ॥ १७ ॥ हिंसक जीव सिंह मृगादिक । खेली तास सिकार ॥
 मद्य मांसनां भक्षण कीथा । पिया गांजा सुलफा धार ॥ दुकृत
 ॥ १८ ॥ दिनजोयां दिनपूज्यां ईधण । वाल्या चूल्हा मांहि ॥
 लट्ट गिनोला घुंण इल्यादिक । विराधिया हुवै ताहि ॥ दुकृत
 ॥ १९ ॥ परदाह दीधी कलह लगाव्या । घातकरी विश्वास ॥
 गर्भ गलाव्या मंत्रपहाव्या । दसीकरणादिक जास ॥ दुकृत ॥ २० ॥
 गुणवंतानां गुण नहीं गमियां । दिया अछुता भाल । संत स-
 त्पारी निन्दा कीधी । मञ्जर भावें भाल ॥ दुकृत ॥ २१ ॥
 पंच शाश्वत सेवा सेवाया । तिमहिज पाप अठार ॥ इणभव
 पाथव दुकृत कीथा । पावो त्रिविध २ धृकार ॥ दुकृत ॥ २२ ॥
 एणपरि दुकृत कारज तेहनी । निन्दा छटै द्वार ॥ हलु कर्मों
 निन्दे हतात्म । पावै सुख अपार । दुकृत निन्दे धरि अहलाद
 ॥ २३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

पुनः पुनः पुनः पुनः । पुनः पुनः पुनः पुनः ॥
 पुनः पुनः पुनः पुनः । पुनः पुनः पुनः पुनः ॥ जे किया

सावध काय्य तेहनी निन्दनां करिये बली । शुभकाय्य भलभाज्ये
आचारिये । जेमथावैरंगरली ॥ ० ॥

॥ इति पष्ठम् द्वार ॥

॥ अथ सप्तम् सुकृत अनुमोदनाद्वार ॥

॥ दोहा ॥

तप उपवासादिककिया । व्रत संवर सुखकार ।
सुकृतनीं अनुमोदनां । सप्तम् द्वार मझार ॥ १ ॥
जिनमार्ग शुद्ध निगमलो । समकित चर्ख उदार ।
ज्ञान दरशन चारित्र तप । ते अनुमोदुं सार ॥ २ ॥

॥ ढाल दशमी ॥

नींदडसी हो नाह निवारिये ॥ एदेशी ॥

श्री तीरथ पति इम उपादेश्यो । मत हणज्यो हो छकाय
नां जीयकै ॥ अनेरा पास म हणावज्यो । अनुमोदयां हो लागै
पाप अतीवकै ॥ करो जिन धर्मनीं अनुमोदनां ॥ १ ॥ भोजन
विवध प्रकारनां । आरंभ कियां हो निपगै छै तायकै ॥ छहुं
कायांरी हिन्सा हुवै । ते भोगवियां हो किंअत्र धर्म न थाप
कै ॥ करो ॥ २ ॥ जो खायां पीयां में धर्म हुवै । तो श्रावक ति-
णनें हो साग्ग्यां पाप पंहरकै ॥ बालि दूजांनें त्याग करावियां ।
अनुमोदयां हो लागै अघ भरपूरकै ॥ करो ॥ ३ ॥ सर्व ब्रत्ती
साधू भला । ते टाली हो बाकी संसारी जीवकै । तारांरो खाणों

पीणों बलि पहरणों । सब भवत में हो जाणों दुरगति नीवकै ॥
 करो ॥ ४ ॥ सावद्य खोटा जाणिनें । मुनी लाग्या हो काम
 भोगादि सोधकै ॥ ते सावद्य ग्रहस्थे कियां । तिण माहिं हो
 धर्म पुन्य किम होयकै ॥ करो ॥ ५ ॥ इमांहुज मृषा बोलियां
 दोनव्यां हो अनुमोद्यां येककै ॥ अदत्त मैथुन सेवियां । स-
 वायां हो यावै व्रत में छेक कै ॥ करां ॥ ६ ॥ बलि पंचमूं आ-
 श्रव परितरो । ते राख्यां हो पाप लगै छे सांयकै ॥ ते दूजा
 नें देयां देवादिषां । भलो जाण्यां हो मत जाणों धर्म कोयक ॥
 करो ॥ ७ ॥ ये पांचूं लाग्या में धर्म छै । ता सेवतां हो
 प्रशुभ कर्म बंधायकै ॥ अनेगं नें सेवायां अनुमोदियां । तीनों
 करणां हो येक सरिषा पायकै ॥ करो ॥ ८ ॥ दशमं अङ्ग
 में जिनकणो । आश्रव छांडयां हो श्री जिनजीरा धर्म कै ॥
 व्रत अव्रत जे आलख्यो । तेही जाणों हो इण बातरो मर्मकै ॥
 करो ॥ ९ ॥ कौट साता दियां साता हुवै ॥ ते नहिं जाणी हो
 श्री जिन धर्म नी बात कै ॥ जे धर्म अधर्म न आलख्यो । तयारै
 पट में हो शबियो पोर मिट्यातकै ॥ करो ॥ १० ॥ श्री सु-
 यमरा अङ्ग सूत्र में । तिण नें मुख्य हो भाण्यो श्री जिनराज
 कै । मार्ज मार्ग सृं बलनो कणो । इम इत्यादिक हो पट बाल
 भित्तिग कै ॥ करो ॥ ११ ॥ अशुद्ध प्रत्यक्ष छांडनै । शुद्ध
 पाण्यो हो जिन साक्षा में धर्म कै ॥ तरणों बंछ्यो स्व पर तणुं
 ते फलमार्गो हो पारि जिव सुख पर्म कै ॥ करो ॥ १२ ॥ ये
 इम उपाय साधित तप भला । भवादिषि में हो निखाने महा-
 अर्थ ॥ ते सगल मवार सेवियां । सेवाया हो अनुमोदुं ने
 साधन ॥ करो ॥ १३ ॥ अहित्तिन सिद्धनै आयगिया । अवज्झा
 पाणि रणि में हो अणु सर कै ॥ तेही मुनि सेवा करी ।

अनुमोदं हो विनय करि नमस्कार कै ॥ करो ॥ १४ ॥ सामा-
 ईक पोसा किया । छहूँ आवश्यक हो किया कालों काल कै ॥
 उद्यम कियो जिन धर्म में । अनुमोदं हो पाल्या व्रत रसाल कै ॥
 करो ॥ १५ ॥ निरदोष दान सुपात्रने । दियो देवायो हो
 भलो जाण्यो जेहकै । तेहनीं करुं अनुमोदनां । अलगी थावै
 हो कर्म रज खेह कै ॥ करो ॥ १६ ॥ दया अनुकम्पा जे करी ।
 करावी हों भली जाणीं तासकै ॥ संजम जीवत बाँझियो ।
 मन बच काया हो अनुमोदं जासकै ॥ करो ॥ १७ ॥ शुद्ध
 साधु निगुण्य सैं । में सुणियो हो वारुं सरस बखानकै ॥ सूत्र त-
 णां बच सांभल्या । अर्थ धारया हो ते अनुमोदं वान कै ॥
 करो ॥ १८ ॥ दान शील तप भावना । में सेव्या हो सेवाया
 धरि चित्त कै ॥ समकित दृढ करि आसत्या ॥ अनुमोदं हो
 ते परम पवित्र कै ॥ करो ॥ १९ ॥ जिन शासन अधिक दृढा
 विषो । बलि गाया हो गणिनां गुण ग्राम कै ॥ असन्त हर्ष
 धरि ऊचरया । अंतस मनसुं हो अनुमोदं तांम कै ॥ करो ॥
 २० ॥ इत्यादिक सुकृत तणीं । अनुमोदन हो येह सप्तम द्वार
 कै ॥ आवश्यक तन मनसैं करै ॥ आनन्द थावै हो दशमीं ढाल
 विचार कै ॥ करो ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

आनन्द थावै दुःख जावै सुख पावै धर्म सुं । जे भविक
 भावै सुबुद्धि आवै द्रव मिटावै नर्मसुं ॥ इम जाण व्रत पचखाण
 कीजे दान दीजे पात्र नैं । अव्रत तजी जे व्रत पाली जे आरा-
 धीजे यात्र नैं ॥ १ ॥

॥ इति सप्तम द्वार ॥

॥ अथ अष्टम भावना द्वार ॥

॥ दोहा ॥

अष्टम द्वारे भावना । भावै श्रावक सार ।
अशुभ कर्म दूरा टले । पावै सुख अपार ॥ १ ॥
तन धन जोवन कारमों । वादर जम विलाप ।
देखो दिनकर तेहनीं । तीन अवस्था घाय ॥ २ ॥
हाथ अर्णी जल बिन्दुको । जीतव जाणों तेम ।
तिणहुं उत्तम नर नारियां । राखो धर्म सें प्रेम ॥ ३ ॥

॥ ढाल इजारमी ॥

श्रयांत जिनेश्वर प्रणमुं नित बेकर जोडिरे ॥ एदेशी ॥
तज दिभाव निज भावमें । रमिये नर चतुर सुजाणरे ॥
निज सातम में गुण घणां । मत पर गुण में सुख जाणरे ॥
मत पर गुण में सुख जाण श्रावक गुण ग्राहिका । भावो
भावना येम उदाररे ॥ १ ॥ अनन्त ज्ञान दरशन भला । बलि
चारित दीर्य अपाररे ॥ येह निजगुण हैं घांहिरा । जरा अन्तर
ज्ञान विचार रे ॥ जरा ॥ आ ॥ भावो ॥ २ ॥ निजगुण विन
अहु कारमां । दिगसंता न लागै दाररे ॥ अपिर जोवन धन
आणये । जिम दीजली नृ चिमत्काररे ॥ जिम ॥ आ ॥
॥ भावो ॥ ३ ॥ ये तनु जे हं पामियो । तेखिय में भंगुर घायरे ॥
ते अविद्याशी सातमां । इण संग क्यों रह्यो सोभायरे ॥ इण ॥
॥ भावो ॥ ४ ॥ अशुभ कर्म घी सातमां । मैली होय
रही बसि जाहरे ॥ अशु परिलाम सु ल्पयाने । प्रगट करिये

गुण खासरे ॥ प्रगट ॥ आ ॥ भावो ॥ ५ ॥ मनुष जन्म दुः-
 लभ लहो । आर्ज क्षत्र पुन्य प्रमागुरे ॥ उत्तम कुल आय
 ऊपनू । पायो आयु शुभ दीर्घ जांशर ॥ पायो ॥ आ ॥ भावो
 ॥ ६ ॥ बल प्राक्रम इन्द्रियां तणों । मित्तयो सतगुरु नों संयो-
 गरे ॥ तो पिण धर्म करै नहीं । एहयो मूर्ख मूढ अयोगरे ॥
 एहयो ॥ आ ॥ भावो ॥ ७ ॥ पुत्र कलत्र परवार सें । धन
 धान परिग्रह मांहिरे ॥ मूर्छित मोहनी छाक में । म्हांरो २
 करि रह्यो ताहिरे ॥ म्हांरो २ ॥ आ ॥ भावो ॥ ८ ॥ ये बहु
 स्वार्थनां सगा । सतलव विन न करै साररे ॥ वेदन वंटावै नहीं ।
 पुत्रादिक जे परिवाररे ॥ पुत्रा ॥ आ ॥ भावो ॥ ९ ॥ पूर्वे
 जेहवा बांधिया ॥ तेहना उदय हुवै पुन्य पापरे । सुख दुःख उप-
 जै जीवरै । ते भोगवै आपों आपरे ॥ ते भोगवै ॥ आ ॥ भावो
 ॥ १० ॥ वेदन उपजै शरीर में । तिण अवशर येम विचाररे ॥
 वार अनन्ती भोगव्या । दुःख नरक निगोद मकाररे ॥ दुःख
 ॥ आ ॥ भावो ॥ ११ ॥ तेतीश सागर लागि सहा । दुःख सा-
 तपी नरक अनन्तरे । तो येह अनुष्यनां भव तणां । गई सम-
 किंचित हुन्तरे ॥ गई ॥ आ ॥ भावो ॥ १२ ॥ जे में समाकि-
 त विन कृया । पानी कष्ट सह्यो बहु बाररे ॥ आतन कार्य
 सरथा नहीं । समकित विन नहीं भव पाररे ॥ समकित ॥ आ ॥
 भावो ॥ १३ ॥ हिव समकित ब्रत पाविया । आयो रतन चि-
 न्तामाखी हातरे ॥ तो येह वेदन समपणें । सहा लाभ अखंत
 विख्यातरे ॥ सहा ॥ आ ॥ भावो ॥ १४ ॥ कष्ट खम्यां समभाव
 सें । टूटै अशुभ कर्म अघ जालरे ॥ उसन तवै जल विन्दु ज्यों ।
 भस्म हुवै कष्टो परम कुपोलरे ॥ भस्म हुवै ॥ आ ॥ भावो ॥
 ॥ १५ ॥ सूको तृण पूलो आगि में । सित्र पणें दहै तिम कपरे ॥

पंचमां भंग विषै कह्यो । इम जाणि किजे जिन धर्मरे ॥ इम ॥
 ॥ आ ॥ भावो ॥ १६ ॥ अल्पकाल दुःख सहन थी ॥ शिव-
 पाप्मां गजमुख मालरे ॥ चरम जिनन्द चांवीसमां ॥ कष्ट
 स्वमिया जति सुविमालरे ॥ कष्ट ॥ आ ॥ भावो ॥ १७ ॥ बहु
 वर्षे तीव्र वेदनां । सही चक्री सनत कुमाररे ॥ मुक्ति गया
 कर्म क्षय करी । पाया आतमीक सुख साररे ॥ पाया ॥ आ ॥
 भावो ॥ १८ ॥ मुनि जिन कल्पी उदेरिने । लेवै कष्ट जे वि-
 द्य प्रकाररे ॥ तो एहां रैये वेदनां सहभै उदय थई इण वाररे ॥
 सहभै ॥ आ ॥ भावो ॥ १९ ॥ सम भावै भैयासियां ॥ ।
 कर्म राशि तणू चक चूर ॥ किंचित् काल में दुःख रुहां ।
 पावे सुगति सुख भरपूररे ॥ पावे ॥ आ ॥ भावो ॥ २० ॥
 अतिरोग पीडाणां जगतिमें । दुःख भोगै अज्ञानी जीवरे ॥ तो
 हुं शानी किमकरं ॥ वेदन उपज्यां रुदन अतीवरे ॥ वेदन ॥
 ॥ आ ॥ २१ ॥ नव महिनां गर्भावाप्त में । परवस पायो अ-
 ति दुःखरे ॥ तो स्ववस ये वेदनां । स्वमियां पर भय में घणों
 सुखरे ॥ स्वमियां ॥ आ ॥ २२ ॥ पुद्गल सुख ये पामला ।
 अनिया दार अनन्त घषायरे ॥ गृध्र पणै तिण में रुहां । पडै
 शिख सुखनी अंतरायरे ॥ पडै ॥ आ ॥ भावो ॥ २३ ॥ आर्त
 रोड निवार नै । ध्यावो धर्म ध्यान दिल मांढरे ॥ अनिय अ-
 मर्या जे भादनां । भावां भव २ में दुःख नांहिरे ॥ भावां ॥
 ॥ आ ॥ भावो ॥ २४ ॥ पर भवमें आयो येकलो । बलि जासे
 यहा खरे ॥ काहें भरोनै काहें रहो । जरा ममभो आंणि
 विदेहरे ॥ जरा ॥ आ ॥ भावो ॥ २५ ॥ इम जाणीं शुद्ध निर-
 मलो । पायो संगम सुतरे प्रकाररे ॥ च्यार कषाय निवार नै ।
 जरा ॥ आ ॥ भावो ॥ २६ ॥

ज्यो साधू पणों नहीं ग्रहिमको । तो आचरनां व्रत बाररे ॥
 निर. अतिचारे पालियां । थावै नैडा शिव सुख साररे ॥ थावै ॥
 ॥ आ ॥ भावो ॥ २७ ॥ त्याग वैराग वधाविये । करिये उ-
 चम साधू नीं सेवरे ॥ निन्दा विकथा परहरी । छांडो लुद्र
 भाव महपेवरे ॥ छांडो ॥ आ ॥ भावो ॥ २८ ॥ मतकरो धननुं
 गारवो पायो बार अनन्त अपाररे ॥ सुख दुःख बहुला पावि-
 या । राखो चित्तमें समता साररे ॥ राखो ॥ आ ॥ भावो ॥
 ॥ २९ ॥ धर्म अपूर्व पावियो । मिली सदगुरु नीं जोगवायरे ॥
 तो ढील करो कांई कारणों । रात दिवस ये योंहीं जायरे ॥
 ॥ रात ॥ आ ॥ भावो ॥ ३० ॥ रोग जरा जिहां लगि नहीं ।
 पाणी पहिलां धी बांधो पाजरे ॥ मित्र स्नेही ज्यो आपणां ।
 देवो खानै धर्म नुं साजरे ॥ देवो ॥ आ ॥ भावो ॥ ३१ ॥
 धर्म करंता जीवने । मत पाढो तिणैर अंतरायरे ॥ तेहनां फल
 कहुवा घणां । पावै भव २ दुःख अथायरे ॥ पावै ॥ आ ॥
 भावो ॥ ३२ ॥ इम जाणीं गुणवंत नां । गावो गुण छै जे तेह
 म्हांयरे ॥ अष्टम द्वारे झार मीं ॥ धर्म करसी ते नहीं पिछता-
 यरे ॥ धर्म ॥ आ ॥ भावो ॥ ३३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अनिय १ अशरण २ येकान्त ३ भावन, संसार ४ अन-
 न्त ५ अशुचि ६ भावनां । आश्रव ७ संवर ८ निरजरा ९ फुन
 लोका लोकनीं १० । धर्म ११ नें बलि बोधबीज १२
 ये बारे भावना भाविय । परणाम शुद्ध धिर भाव राखी ।
 संचित पाप पुलाविये ॥ १ ॥

॥ इति अष्टम द्वार ॥

॥ अथ नवमो अणशण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

सामायक पोसा करै । प्रतिक्रमणां शुभ ध्यान ।
समता रसमें मूलता । धन २ ते गुण वान ॥१॥
कुचिमन तज भगवंत भज । राग द्वेष विहूँ टार ।
स्व भ्रातम में गुण घणां । करिये उज्ज्वल सार ॥२॥
संचित पाप पिटाववा । छेहलै सवसर सार ।
नवमें द्वार कण्ठे भलो । शणसणनू अधिकार ॥३॥

॥ ढाल वारमी ॥

सीतां भविषण नैं ऊँह निशंक सुं ॥ एदेशी ॥

अनन्त मेरु सम पुद्गल भोरया । भीठा भविष्य समानोरे ॥
एक एक लोक साक्षात् प्रदेशें । बार अनन्त पिछानोरे ॥ धन
भन गुणवंत शराशण धारै ॥ १ ॥ अनन्त पुद्गल लई पाछा
वापिया । भर २ मांदि विचारोरे ॥ तोही चेतन तुज भूख न
भागी । तुम्हणा अधिक शपारोरे ॥ धन २ ॥ २ ॥ सरस भोजन
भन समता पाया । ढाल मन गमतो पाखीरे ॥ प्रधान सभें उद्यो
सम भूयो । शणसण करै हम जाणीरे ॥ धन २ ॥ ३ ॥ द्विविध
शराशण भी जिनकर भाख्यो । प्रदन पादोपगमन जाणीरे ॥
भात पाखीना लाग ते हुजो । जाइलीव प्रमाणीरे ॥ धन २ ॥
॥ ४ ॥ पूर्वसमस्त वेचन जोडी । नवोदय विद्या नैं करियेरे ॥
दुखी भविष्य भगवंत मनुने । तीनों धर्म साधारज नैं उचरि-

येरे ॥ धन २ ॥ ५ ॥ अशाण खादम स्वादम प्रति तजने ।
 अवशर जाणि पाणी परिहारोरे ॥ तृषा परिसह आय उप-
 नां । आडिग रहै सुविचारोरे ॥ धन २ ॥ ६ ॥ मात तात सुत
 बंधव त्रीया । इत्यादिक पर वारोरे ॥ हाट हवनी वाग वगीचा ।
 तेहथी स्नेह निवारोरे ॥ धन २ ॥ ७ ॥ रतन करीडवा समये
 काया । तेहने पिण बोसरावैरे ॥ मावथ कारज नहि करै ति-
 रासे । धर्म ध्यान चित्त ध्यावैरे ॥ धन २ ॥ ८ ॥ आनन्द
 श्रावक कियो संसारो । अवधि ज्ञान उपज्यो आईरे ॥ सुधर्म
 कल्पे जाय उपनूं । येकावतारी थाईर ॥ धन २ ॥ ९ ॥
 सम परिणामां कष्ट सह्यां थीं । कर्म निरजरा थावैरे ॥ संसार
 भ्रमणनूं छेद करै फुन । पुन्यरा थाट बंधावैरे ॥ धन २ ॥ १० ॥
 इण पर लोकनीं बंछा न करतो । जीतव मर्ण न चावैरे ॥ काम
 भोगनीं आशा तजने । गुणवंत नां गुण गावैरे ॥ धन २ ॥ ११ ॥
 शिव सुख मामीं दृष्टी राखे । रमण करै निज गुणमैरे ॥ आत्म
 सुख अभिल पी श्रावक । सार न जाणै सुख पुन्यमैरे ॥ धन २ ॥
 ॥ १२ ॥ नवमै द्वार ढल वारपी । कछो अणशण अधिकारोरे ॥
 छेहनै अवशर करै गुणवंत श्रावक । पापै सुख अपारोरे ॥
 धन २ ॥ १३ ॥ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अपार सुख शिवनां कहा तिहां जन्म जरा मृत्यु नहीं ।
 नहि रोग सोगरु भोग बंछा बलि दुःखंछा नहि रही ॥ जिहां
 रमन है उपियोग केवल ज्ञान दर्शन में सही । महु द्रव्य भाव-
 नां जाणछे प्रभू मिद्ध लोकमें रही ॥ १ ॥

॥ अथ दशमं द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दशमं द्वार करै सही, पांच पदा तुं जाय ।
विघ्न मिटै स्मरण क्रियां, जय थावै सहु पाय ॥१॥
मनिहस्त सिद्धनें साधरिया, उवझाया अगुगार ।
भजन करै इण पांचनू, तेहथी जय जयकार ॥२॥

॥ ढाल तेरमी ॥

पना माझ निरखण दे गन गोर । तथा आतम सुभाव
घोलख करणी तु पाँच भव जलतीर ॥ एदेशी ॥

शुभ परिणाम बलि शुभ लेखपा । प्रसस्त भलाअध्यव
साय ॥ एतां निशि धर्म ध्यान दिल धरतां । कर्म पटल खय
जाय ॥ कर्म ॥ गुण जन ॥ जी पारो आतम गुन प्रगटाय ।
गुण जन । जपिये श्री नवकार ॥ १ ॥ जेहनें सखाय पणें
पार पाँच । परभव सम्पति सार ॥ अण भोगिक सुर पदवी
पाये । एतादिक अवतार ॥ इन्द्रादिक ॥ सु ॥ इंद्रा ॥ जी
पारो आतम ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २ ॥ पंच परमेष्ठ
सम्पति पुन जपिया । सह दधिगोपद लेख ॥ सीव पणें तरिये
शिव पणिये । पुन इंद्रली जल तेम ॥ पुन ॥ सु ॥ पुन ॥
जी पारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ३ ॥ दहटा चरावतो बालक आ-
यो । जेह पुर देह तिवार ॥ मंड नवकार जरी माहि पैठो ।
मरिया श्री दोम द्वार ॥ सरिता ॥ सु ॥ जी पारो ॥ सु ॥

जपिये ॥ ४ ॥ रतनवती जे भीलनीं नारी । तिण सुमरयो नव
 कार ॥ किंचित कालमें पुन्य उपावी । पांचमें कल्प भवतार ॥
 ॥ पांचवें ॥ सु ॥ पांच जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ५ ॥ शर्व
 सखीं थयी पुस्पनीं माला । श्रीनवकार प्रभाव ॥ श्रीमती सती
 कीर्ति लहि भारी । उभय भवें सुख सार ॥ उभय ॥ सु ॥
 उभय भवें ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ६ ॥ जहाज डूबता
 तेठ समुद्रे । गुणियो श्री नवकार ॥ सहाय कियो मुर जहाज
 उठावी । मेलदी पैली पार ॥ मेलदी ॥ सु ॥ मेलदी पैली पार
 जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ७ ॥ श्री नवकारनुं स्मरण करतां
 दूर टलै जंजाल ॥ वैरी दुस्सन डायण सायण । नांश जावै
 तत्काल ॥ नांश जावै ॥ सु ॥ नांश जावै ॥ जी थारो ॥ सु ॥
 जपिये ॥ ८ ॥ समदृष्टी आवक गुणवंता । जे सुभरै नवकार ॥
 जेहनां फलनुं कहिबुं किस्सुंते । पामें भवजल पार ॥ पामें भव-
 जल पार ॥ सु ॥ पामें ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ९ ॥
 इम जार्णी स्मरण नित करिये । धरिये आत्म ध्यान ॥ निर-
 वध करणी फुन आचरिये ॥ सुनिये श्रीजिन वान ॥ सुनिये ॥
 सु ॥ सुनिये ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १० ॥ निजपर
 भाव विलोक यथार्थ ॥ श्रद्ध द्रव्य षट काय ॥ आरंभ छोड
 तोड अघघाती । शिव गति नैही घाय ॥ शिव ॥ सु ॥ ११ ॥ मच्छर
 भाव तजी नित दू तो । गुणवंतनां गुण माय ॥ ज्ञाता सूत्र
 विपै जिन भाख्यो । गौत तीर्थकर वंघाय ॥ गौत्र ॥ सु ॥ गौत्र
 जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १२ ॥ श्री जिन शाश्वत पंचम
 अर्क । भिक्षु गर्णी सुख दाय ॥ विविध मर्याद बांदि मण वत्सल
 मिट्ठ्या तिमिर हटाय ॥ मिट्ठ्या ॥ सु ॥ मि ॥ जी थारो ॥
 सु ॥ जपिये ॥ १३ ॥ द्वितिये पाट भारी माल मणाधिप ।

तृतीय पाठ ऋषिराय ॥ तुर्य जयाचार्य महा प्रभाविक । लाखां
 ग्रन्थ बरुण ॥ लाखां ॥ सु ॥ लाखां ॥ जी थारो ॥ सु ॥
 जपिये ॥ १४ ॥ मधवा सम बघराज पंचम ॥ तसु पट धार्मिक
 कदाय ॥ मसम पट श्री डालचंद गणी ॥ दीर्घ दृष्टी सुख दाय
 दीर्घ ॥ सु ॥ दीर्घ ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १५ ॥ तेहने
 पाट वर्तमान में ॥ शोभत जिम जिनराय ॥ श्री श्री कालूराम
 गणीस्वर ॥ प्रणम्यां पातिक जाय ॥ प्रणम्यां ॥ सु ॥ प्रण-
 म्यां ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १६ ॥ बेह जिन शाशन
 सुखनुं वाशन ॥ ये गणनें गणिराय ॥ अहो निशि सेवा करले
 भविजन ॥ मत कर भवरनीं च्हाय ॥ मत ॥ सु ॥ मत ॥ जी
 थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १७ ॥ इण शाशन में रंक्ति रहै ॥ लां-
 री करत सदा सुर सहाय ॥ ऋद्धि वृद्धि धानै दुःख मिट जावै
 विघ्न न होवै कांय ॥ विघ्न ॥ सु ॥ विघ्न ॥ जी थारो ॥ सु ॥
 जपिये ॥ १८ ॥ प्यार तीर्थ सुख धाम स्वाम मुक्त ॥ श्री का-
 लूराम राय ॥ तेहनुं आवक गुनाव कहै ॥ थयो आनन्द हर्ष
 सहाय ॥ आनन्द ॥ सु ॥ आनन्द ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये
 ॥ १९ ॥ तसु भादेशी सेव्य भेपी ॥ आतमां अर्थी जान ॥ पून-
 मचंद मुनि शान्ति मुद्रा ॥ पूनमचंद समान ॥ पूनम ॥ सु ॥
 पूनम ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ २० ॥ चंप तरु सम चं-
 पानान ज्ञापि ॥ ज्ञान दोलत बंत जान ॥ दोलतराय मुनि ये
 तीव ॥ दारि सरस बहान ॥ बांचै ॥ सु ॥ बांचै ॥ जी थारो
 ॥ सु ॥ जपिये ॥ २१ ॥ लंगणीमय बहोत्तर सम्वत में ॥ जेष्ठ
 मास बहिराय ॥ तेरा राल दक्षविष आराधन ॥ कहि जलपुर
 सुमहाय ॥ कहि ॥ सु ॥ कहि ॥ जी थारो ॥ सु ॥ जपिये
 श्री विचार ॥ २२ ॥ इति ॥

॥ કલશ ॥

સુખદાય આરાધન કરે ઇમ, ભવિક મન ઉચ્છાદ હી । તે
પાપ પેક નિશંક ટાલે, વ્રત સંભાલે ઉમાદ હી ॥ શ્રી કાલૂ ગણી
મહારાજ મુનિ શિરતાજ તામુ પસાય હી । કહે ગુલાવ નિજ
ગુન જાવ પ્રગટે, ધર્યાં આનન્દ થાય હી ॥ ૧ ॥

॥ ઇતિ દશવિધ આરાધન ॥

॥ અથ સ્વામી શ્રી મીશ્વરજી કૃત ॥

॥ શ્રાવક ગુણ સંજ્ઞાય ॥

॥ કેકૈરે કુકલા કેલૈવ ॥ એદેશી ॥

મિન મિન જાણેરે શ્રાવક જીવને । જાણે અજીવ પુન્ય
પાપોજી ॥ આશ્રવને જાણેરે કર્મ લગાવતો । સંબર ટાલે સંતા-
પોજી ॥ મગધંત મારુયારે શ્રાવક ચદવા ॥ ૧ ॥ નિરજરા પા-
દેરે ઢીલો વંધને । કરણી કરે તિણ હેતોજી ॥ મુક્તિ તણાં સુ-
ખજાણે સાસ્વતા । ઉઘડયા અભ્યન્તર નેતોજી ॥ ૨ ॥
પોતે પરચેરે ગુરુને અકલ સું । અન્તરંગ જ્ઞાન વિચારોજી ॥ એપ
દેખી શ્રાવક ભૂલે નહીં । દેસે શુદ્ધ આચારોજી ॥ ૩ ॥
વ્રતાને જાણેરે માલા રતનાં તર્ણી । અવ્રત અનર્થ જાણોજી ॥
રેણાદેવી થી પિણયે વૂરી । લાગે માંઠી જાણોજી ॥ ૪ ॥
આદરિયા વ્રત સાધૂ માંહિલા । યે મ્હારે જિનધર્મોજી ॥ તેપ
રજ્યા જે કામ સંસારનાં । તિણસું વંધતા જાણે કર્મોજી ॥ ૫ ॥
શ્રાવક જાણેરે શ્રીજિન આગન્યા । જાણે ધર્મ અધર્મોજી

जिण करणी में नहिं जिन आग्या ॥ तो वंधता जाणें कर्मोजी
 ॥ भ ॥ ६ ॥ परचो पाखंडियांरो श्रावक नहिं करै । नहिं करै
 तिणसुं वातोजी ॥ नींचो मस्तक श्रावक नहिं करै । नहिं करै
 जंचा हातोजी ॥ भ ॥ ७ ॥ भ्रमायो किणरो लागै नहीं ।
 नहिं करै कूडी ताणोंजी ॥ धर्म ठिकाणैरे भूंट वोलै नहीं ।
 पाणै श्रीजिन आणोंजी ॥ भ ॥ ८ ॥ गुरुने देखैरे दोष लगा-
 वता । तो तुरत करै नीकालोजी ॥ लाला लोलोरे कर ऊठै
 नहीं । आ जिन शासनरी पालोजी ॥ भ ॥ ९ ॥ कुगुरु वंद-
 नारो फल तिहां झोलै । रूलै अनन्तो कालोजी ॥ भागल
 गुरांनै श्रावक बंदै नहीं । भगवंत वचन संभालोजी ॥ भ ॥ १० ॥
 कुगुरुने जाणैरे काला नागज्यू । करडो तिणरो डंकोजी ॥
 मुक्ति नगरनां ते छे धाडवी । चोड़ै खांसै निःशंकोजी ॥ भ ॥
 ॥ ११ ॥ गुरुनै दग्धाणैरे साधां आगलै । येकाकी चित ल्या-
 नोजी ॥ याधु कहै ते गुण गुण हुलूसै । मन रलिया यत पायो-
 जी ॥ भ ॥ १२ ॥ मदगुरु बांदैरे भलै मन भावसुं । नींचो
 शीघ्र नपायोजी ॥ तीन प्रदक्षणां दो कर जोड़िने । पंगारै
 पतक लगायोजी ॥ भ ॥ १३ ॥ मार्ग जातांरै मुनिवर ज्यो
 गिरे । बांशी हविन पायोजी ॥ विकसत घाँवरै मुनिवर देख-
 ने । पाँख करै घलीं नमसायोजी ॥ भ ॥ १४ ॥ चारा व्रतरे
 शासनरो रै । श्रमते जे आगारोजी ॥ पोतै सेवै सेबावै श्रव-
 नो । तिणमें नहिं भदैं धर्म लिगारोजी ॥ भ ॥ १५ ॥ व्याज
 वारांनै भगवदैं पारवो । घररो काम चलायोजी ॥ धर्म
 नहिं पन रपावी पारवो । हठडो न करै अन्यायोजी ॥ भ ॥
 ॥ १६ ॥ नींच वरिहैरे निन्दक पापियो । ते निन्दा नरक ले-
 वीये । श्रावक निन्दारे नहिं करै कहनी । जिन शासन

मांहे भायोजी ॥ भ ॥ १७ ॥ जेतला द्रव्य छ लोका लोक
 में । जाखें तिणरो न्यायोजी ॥ द्रव्य खेव कालने वाल भाव
 छुं । जाखें गुण पर्यायोजी ॥ भ ॥ १८ ॥ मोसा मर्म न बोने
 केहने । न करै कूडी वातोजी ॥ कूड कथन नहिं करै श्रीजि-
 नमती । नहिं करै दगो नें घातोजी ॥ भ ॥ १९ ॥ ओछा
 बोल न बोलै केहने । गुण कर गहर गंभीरोजी ॥ चरचा कर
 तारे विच बोलै नहीं । जेम छाली पीवै नीरोजी ॥ भ ॥ २० ॥
 लोक सुखें बखाण साधां आगलै । नहिं पाडै तिणमें वैदाजी ॥
 कर्म घणां पैलो समझै नहीं । नहीं करै क्रोधनें खेदाजी ॥
 ॥ भ ॥ आ ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ अथ जिन आणां धर्म स्तनम् ॥

॥ राग आसावरी ॥

भविका जिन आणां धर्म धारो । येतो मानों कह्यो हम-
 रारे ॥ भविका जिन ॥ ए आंकडी ॥

श्री तीर्थ पति धर्म धुरंधर । जग वत्सल सुखकारो ॥
 अनन्त ज्ञान दरशन चारित्र धर । तेसुं कीजे नमस्कारोरे ॥
 ॥ भविका जिन० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र तप नीका ।
 मोक्ष मार्ग ये च्यारो ॥ श्रीजिन आणां में चिहुं आया । उत्रा-
 ध्ययन अधिकारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ २ ॥ संवरनें वाल नि-
 रजरारे । धर्म ये दोय प्रकारो ॥ ये भल रीत आराध्यां चेत-
 न । पामें भव नुं पारोरे ॥ भ ॥ जिन ० ॥ ३ ॥ पंच महाव्रत
 साधू केरा । श्रावक नां व्रत वारो ॥ जिन आणां में ये विहुं

आया । अविरत रह गई न्यारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ४ ॥ सर्व
 व्रत धारी संजती कहिए । अविरत असंजति धारो ॥ व्रता
 व्रती अमणोपाशक । ते व्रत जिन आंख मंझारोरे ॥ ५ ॥
 ॥ जिन० ॥ ५ ॥ आवक नों खाणों पीणों ते । सावध जोग
 व्यापारो ॥ जिन मुनि आंख न देई तिणरी । धर्म न होवै
 लिगारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ६ ॥ खाणों पीणों नें धनधानां-
 दिक । अविरत में आधिकारो ॥ उदवाई लुपगढा अङ्ग मांहीं ।
 पाठ देख डर धारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ७ ॥ सुस्त आणों में
 गहारो धर्म छे । आचाराङ्ग संधारो ॥ चरम जितेश्वर वीर पर-
 मेश्वर । आपगया तंत सारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ८ ॥ तेह धर्म
 नां दांय भेद छे । दशद्वै कालिक मंझारो ॥ अहिंसा है जिण
 कर्तव्य में । तहां संजम तप सारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ९ ॥
 लुगुम आसीस पिण येछिज दीनी । आगमरेम विचारो ॥
 आलस मद करिण्यो आणों में । उद्यम आणों बागेरे ॥ ५ ॥
 ॥ जिन० ॥ १० ॥ निरवद्य कार्य मांति आहा । जिन मुनि
 दे एक धारो ॥ सावध मांति आहा मत जाणों । नहीं भेद
 लिगारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ ११ ॥ करण करावण बनि अ-
 तुमोदन ॥ येह तीनों एकसारो ॥ श्रीजिन आहा गिर धारी
 ज । तद होई निस्तारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ १२ ॥ जेई आहा
 में पाप हतई । धर्म जिन आहा सारोरे । दोहू बातों कष्टद
 प्रसपे । ते किम पामें भव सारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ १३ ॥ श्री-
 जिनमत का साधू राज ॥ भाई दिना विचारो ॥ बुद्धिमान
 हो भोला नें । रहलाई निराधारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥ १४ ॥
 जो पारि तिरणो होवै तो । लुद्ध साधू लुद्ध धारो ॥ भेष धारों
 से सहति तजने । अन्तर हान विचारोरे ॥ ५ ॥ जिन० ॥

॥ १५ ॥ जो पूरी समझ पड़े नहीं तो । शुद्ध जपान वकारो ॥
 गुणवन्तो का गुण गाई नें । अशुभ कर्म सब टारोरे ॥ भ ॥
 ॥ जिन० ॥ १६ ॥ निन्दा विकथा दूर तजी नें । सूत्र सुणों
 सुख कारो ॥ पिण आज्ञा बाहर धर्म कहि नें । परभव मतनां
 विगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १७ ॥ अहिंसा धर्म सुखसुं कहि
 नें । म करो हिंसा प्रचारो ॥ हीणाचारीकृत ग्रन्थ वांचक ।
 अहलो जन्म मत हारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १८ ॥ ठाम ठाम
 जिन आगम मांहीं । आज्ञा अधिक उदारो ॥ धारो जिन आणां
 धर्म नीको ॥ गुलाव कहै सुख कारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १९ ॥ इति ॥

॥ अथ जिनमार्गस्तवनम् ॥

॥ राग उजाफ में ॥

शुद्ध सग सांचो भूलै मतजाय । प्यारे तोनें कहूं छूं सम-
 जाय ॥ शु ॥ ए आंकडी ॥

दान शील तप भाव ये च्यारों । शिवपुर केरा राह ॥
 झूठो पंथ छांड अव प्राणी । ज्यो आत्म सुख चाह ॥ शु ॥
 ॥ १ ॥ दान सुपानें दोहिलोरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ चित
 वित पात्र तीनों शुद्ध मिलियां । मन वान्छित फल पाय ॥ शु ॥
 ॥ २ ॥ चित शुद्ध दातानें भलोरे । वित शुद्ध वस्तु कहाय ॥
 पात्र सु साधू जानियेरे । जे न हणें षट्काय ॥ शु ॥ ३ ॥
 देता दाता दान सुपानें । संचित कर्म हटाय ॥ उत्कृष्ट रश
 आविसारे । तीर्थकर पद पाय ॥ शु ॥ ४ ॥ चौथे ठाणें आ-
 खियोरे । पंचमुद्देशा मांय ॥ कुपात्र ते कुनेत्र छेरे । वोयां

निरफन पाय ॥ शु ॥ ५ ॥ समंजती आविरती नें रे । अष्टम
 शतक कहाय ॥ छंद उद्देशी गौतम पूछ्यो । बीर प्रति सुखदाय
 ॥ शु ॥ ६ ॥ सचित अचित प्राशु अपान् । प्रति लाभ्यां स्युं
 पाय ॥ जिन कहै येकान्त पाप हुक्कैरे । निरजरा किंचित नांए
 ॥ शु ॥ ७ ॥ घानन्द आदक लियो अभिग्रह । लपाशक दशा
 कहाय ॥ अन्य तीर्थी नें आजघीरे । देवुं देवावुं नांहि ॥ शु ॥
 ८ ॥ मृगा लोहा नें देख नें रे । गौतम जिनपे जाय ॥
 पूछै स्युं दीधौ इण पूर्व । तेहना येह फल पाय ॥ शु ॥ ९ ॥
 तिणसुं दान कुपात्र नारे । फल घनि कटुक कहाय ॥ हिंसक
 भणीं हिंसा करि दीधौ । धर्म क्रिधां घां घाय ॥ शु ॥ १० ॥
 सावय दान प्रसंगियारे । घानक कहिये ताहि ॥ सुयगडा अङ्ग
 द्वारमें अध्यय नें । बीसपी गाथा यांहि ॥ शु ॥ ११ ॥ दान
 निषेधां लणवालानो । वृषी नुं छेदक पाय ॥ निम कारण
 वर्तमान बाल में । मृग कौं मुनिराय ॥ शु ॥ १२ ॥ गडकायांगी
 रक्षा निमित्तें । पुण्य नहीं काण्यो नाय । येणि सुयगडा अङ्ग
 वेंरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ शु ॥ १३ ॥ दान देवम अध्य-
 यन मेंरे । वस्तीसमीं जे गाह ॥ दान देवां लेनां निम अवसर ॥
 मुनि न कहै हां नांहि ॥ शु ॥ १४ ॥ अन्ध हेतु मंगल नुं ।
 ब्रह्मणि भणीं जे दान ॥ देवो लाभो मुनिवरे । सुयगडा
 अङ्गे जान ॥ शु ॥ १५ ॥ दानि प्रायश्चित्त चौपाल नुं । अनु-
 मोषां तें जाय ॥ नितीय उद्देशै एतमेंरे । भाष्यो श्री जिन-
 राय ॥ शु ॥ १६ ॥ आदय नुं जे खारो दीधौ अन्नमें ब्रह्म
 तो ॥ सुयगडा अङ्ग दौं श्रुतरवै । द्वितीय कर्मेदन विवेक
 ॥ शु ॥ १७ ॥ भाइ सह अदित बहारे । दारांनि दामें
 नांए ॥ तेह सह तीखे बिरांपी । धर्म हुरद नुं नांए ॥ शु ॥

॥ १८ ॥ श्रावकनीं जे आतमारें । आविरत नीं अपेक्षाय ॥
 शस्त्र भङ्गे छकायतुरे । निमल विचारो न्याय ॥ शु ॥ १६ ॥
 सामाईक में पिण कहीरे । अधिकरण जिन राय ॥ भगवती
 सप्तम शतकमेरे । प्रथम उद्देशा मांय ॥ शु ॥ २० ॥ खाणां
 पीणां पहरणारै । त्याग्यां थी हूवै धर्म ॥ भोग्यां भोगायां बलि
 अनुमोद्यां । वंधै अशुभ अघ कर्म ॥ शु ॥ २१ ॥ साता दियां
 साता हूवैरे । इम अन्य तीर्थी कहंत ॥ सुयगडा अंग श्री जिन
 भाष्यो । ते सुणिज्यो विरतंत ॥ शु ॥ २२ ॥ न्यारो आर्ज
 मार्ग थीरे । अलघो समाधि थी जाण ॥ धर्म तणीं निन्दानुं
 करता । जेह वधै इम वांण ॥ शु ॥ २३ ॥ अल्प सुखारै कार-
 रणेर । बहुत नु हारण हार ॥ अमोक्षरो कारण अछ्छे । भा-
 ष्यो श्री जगतार ॥ शु ॥ २४ ॥ लोह वणिक जिम झूरसीरे ।
 तेह प्ररुपणहार ॥ सूत्र देख निरणय करोर । जिम हांवै नि-
 स्तार ॥ शु ॥ २५ ॥ पात्र कुपात्रे आंतरोरे । सरिषो फल
 नहिं थाय ॥ आम्ब भरोसै वाघां धत्तूरो । आम्ब किहां थी
 खाय ॥ शु ॥ २६ ॥ निरारंभी विन अवतरैरै । देवै दिवावै
 ताहि ॥ ते मारग लोकीके छैरे । पिण शिव मारग नाहि ॥ शु ॥
 ॥ २७ ॥ राय प्रश्रेणी सूत्रमेरे । प्रदेशी राजान ॥ च्यार भाग
 करि राजरारे । थयो धर्म करण सावधान ॥ शु ॥ २८ ॥ एक
 भाग राण्यां निमित्तरे । दूजो भाग खजान ॥ तीजो हय गय
 अर्थहीरे । चौथां भागरो दान ॥ शु ॥ २९ ॥ इम चिहूं भाग
 करी तिणेर । अन्य भणी वौलाय ॥ संसारिक लफरो इम मेटा ॥
 छट्ठम छट्ठम तप ठाय ॥ शु ॥ ३० ॥ व्रतधारी श्रावक थयोरे ।
 धर्म ध्यान चित ध्याय ॥ तेरा वेला करि कारज सारथा । प्र-
 थम उपाङ्गरे मांय ॥ शु ॥ ३१ ॥ दान सुपात्रने दीजियेरे ।

देकर मत पायाय ॥ धुरमार्ग ये शिव तणोंरे । भाष्यो श्री
जिनराय ॥ शु ॥ ३२ ॥ सुभाऊ प्रमुख पूर्वे भवरे । सुख विपा-
कर मांदि ॥ दान देई शुद्ध साधुनेर । पेकावतारी घया ताहि
॥ शु ॥ २३ ॥ शिव मग दूजो नीलछेरे । तीजो तप कहिवाय
शुभ भावन चौथो कळोरे । आराध्यां सुख घाय ॥ शु ॥ ३४ ॥
अथवा उत्राध्ययन मेरे । मोक्ष मार्ग इम न्यार ॥ ज्ञान दर्शन
चारित तप नीका । बलि धुन अंग मकार ॥ शु ॥ ३५ ॥ स-
म्यक् ज्ञान दर्शन घकीरे । तत्त्व यथा तत्त्व ज्ञाण ॥ कर्म रुकै
चारित्र्य घीरे । तप तुं कर्म दांदांण ॥ शु ॥ ३६ ॥ जिन भा-
पित येद मार्ग छेरे । अन्य अन्य मति ज्ञान ॥ गुलाब कहै भल
भाय रेरे । साध्यां शिव सुख स्थान ॥ शु ॥ ३७ ॥ इति ॥

॥ अथ असंयम जीवितव्य वर्जनीय ढाल ॥

आज नन्दन दन जोगी सायो । जोगीरो रूप मनायो हे
मा ॥ हस चालये ॥

समंजस जीतव मनकोई वेंहो दरज्यो । शिजिनगयोर् नो
॥ ए पांकारी ॥ जीवणो मरणो नारि वेंहणो । दाका अंग
दणमा मांयो रेलो ॥ पुनहुपगटांग दणम अण्यदने । माया जो-
दीमभी ताणोरे ॥ तो ॥ अ ॥ १ ॥ अण्य आदर देता मुनि
विचरे । श्री सुपगवा अंग मांयो रेलो ॥ अण्यदम जीवितव्यन
वरणी । ते दाक अण्यली करायो रेलो ॥ अ ॥ २ ॥ अण्य
जीतव कतो दोहिलो । अण्यदम जीतव नांयो रेलो ॥ दाक अ-
ण्यत पायो भर भवने । दाक नरी नहि वंयो रेलो ॥ अ ॥ ३ ॥
सत्तारिक जीवा नृ जीवणो । वेंहणो वं न दायो रेलो ॥ शु-

रामी देख्यां राग ऊपजै । द्वेषी सुं द्वेष सवायो रे लो ॥ अ ॥ ४ ॥
 वंछै संसारिक जीवणु मरणु । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥
 रागते दशमूं द्वेष ज्ञारमूं । भगवंत पाप बतायो रे लो ॥ अ ॥ ५ ॥
 इंद्र परिक्षा करण मुनिनीं । ब्रह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मि-
 थिला नगरी अग्नि सुं बलती । नमिराय प्रते दरशायो रे लो ॥
 ॥ अ ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन बलता देखी । तांम नांम ऋ-
 षिरायो रे लो ॥ सहामों न जोयो करुणा न आंणी । उत्तराध्ये-
 यन मांहो रे लो ॥ अ ॥ ७ ॥ कह्यो वसूं जीवूं में सुखसूं । संजम में
 लवल्यायो रे लो ॥ ए मिथिला जन बलतां म्हांरो । किंचित
 बलै न ताहो रे लो ॥ अ ॥ ८ ॥ सूत्र निशीथ द्वादशम उदंशै ।
 पाठ विषै इम वायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि ।
 बांधै बंधावै सरायो रे लो ॥ अ ॥ ९ ॥ अथवा बांधिया देख
 जीवां प्रति । करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावै बलि
 अनुमोदै । तो चौमासी चारित्र जायो रे लो ॥ अ ॥ १० ॥
 चूलनी प्रिया श्रावक मोटो । पोसा में सुखदायो रे लो ॥ पूत्र
 तीन मुख आगलि मरता । देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ अ ॥
 ॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसामें । ऊठ्यो छुडावण कांमो
 रे लो ॥ भांगो पोसो ब्रत नेम कह्यो । उपाशक दशामें आंमो
 रे लो ॥ अ ॥ १२ ॥ चंपा नगर तणां व्योपारी । जहाज भरी
 समुद्रें जावै रे लो ॥ एक देव तव करण परिक्षा । तिण अव-
 शर तिहां आवै रे लो ॥ अ ॥ १३ ॥ अरणक श्रावक वैठो
 तिणमें । देव कहै समजायो रे लो ॥ सह मनुष्य सहित ये ज-
 हाज डबोऊं । मान हमारी बायो रे लो ॥ अ ॥ १४ ॥ ज्यो तूं
 मुख सुं धर्म छोड्यो कहै । तो सह जीव वच जायो रे लो ॥
 इम सांभल अरणक दृढ मन करि । धर्म ध्यान चित ध्यायो

रेनो ॥ अ ॥ १५ ॥ डिगायो डिगयो नहि आवक । करुणा
 मोह न त्यागो रे लो ॥ उपशम दूर कियो तब निरजर । सु-
 रेन्द्र हास सरायो रे लो ॥ अ ॥ १६ ॥ प्रिय रूप करि कर
 जोड़ी सुर । दोह्यो इह विधि दायो रे लो ॥ प्रिय धर्म दह
 धर्म तुं सांचो । ए सप्तम संग रे सांचो रे लो ॥ अ ॥ १७ ॥
 श्रीजिन मुख तुं सूत्रे आख्यो । स्नेह राग दुख दायो रे लो ॥
 कर्म बीज राग द्वेष देहुं नज । ज्यो शिव मृदनी च्छाया रे लो ॥
 ॥ अ ॥ १८ ॥ जे संसारिक जीवानीं करुणा । करे उपकार
 स्नेह त्यागो रे लो ॥ ते उपकार संसार तखु छै । जिन धर्म
 नहि तिख सांचो रे लो ॥ अ ॥ १९ ॥ जीव जीव ते दया म
 जाणो । मरै ते छिन्ता नाहो रे लो ॥ मारण वासो छिन्मक
 पापी । नही मरै न दया मुख दायो रे लो ॥ अ ॥ २० ॥ येह
 संसार समुद्र पकी तिर । बंछ तू तिरयो पगयो रे लो ॥ गु-
 लाब कह धन्य ते नर जाणो । जे रागद्वेष त्यागो रे लो ॥
 ॥ अ ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

ताप कैसें गजको फंद छुटायो ॥ दया ॥ आवन मेगि
 गलिपत में गिरधारी ॥ इस बात में ॥

करो हम दया धर्म सुख कारी । दाई जलदी होय नि-
 म्तारी ॥ करो ॥ ए जावरी ॥ छुटिरी अथ नेऊ वायु बन-
 रपति । जस जीव अधिक करारी ॥ देह पटकाय हयो दह
 कोर । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ मरै प्राण
 भूत जीव सब मति । नहि हखा हविचारी ॥ देह कति स-

रागी देख्यां राग ऊपजै । द्वेषी सु द्वेष सवायो रे लो ॥ अ ॥ ४ ॥
 वंछै संसारिक जीवणु मरणु । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥
 रागते दशमूं द्वेष जारमूं । भगवंत पाप बतायो रे लो ॥ अ ॥ ५ ॥
 इंद्र परित्ता करण मुनिनीं । ब्रह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मि-
 थिला नगरी अग्नि सु वलती । नमिराय प्रते दरशायो रे लो ॥
 ॥ अ ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन वलता देखी । तांम नांम ऋ-
 पिरायो रे लो ॥ स्हामों न जोयो करुणा न आंणी । उत्तराध्ये-
 यन मांहो रे लो ॥ अ ॥ ७ ॥ कह्यो वसूं जीवूं में सुखसूं । संजम में
 लवल्यायो रे लो ॥ ए मिथिला जन वलतां म्हांरो । किंचित
 बलै न ताहो रे लो ॥ अ ॥ ८ ॥ सूत्र निशीथ द्वादशमूं उद्देशै ।
 पाठ विषै इम बायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि ।
 बांधै बंधावै सरायो रे लो ॥ अ ॥ ९ ॥ अथवा बांधिया देख
 जीवां प्रति । करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावै बलि
 अनुमोदै । तो चौमासी चारित्र जायो रे लो ॥ अ ॥ १० ॥
 चूलनी प्रिया आवक मोटो । पोसा में सुखदायो रे लो ॥ पूत्र
 तीन मुख आगलि मरता । देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ अ ॥
 ॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसामें । ऊठ्यो छुडावण कांमो
 रे लो ॥ भांगो पोसो व्रत नेम कह्यो । उपाशक दशामें आंमो
 रे लो ॥ अ ॥ १२ ॥ चंपा नगर तणां व्योपारी । जहाज भरी
 समुद्रें जावै रे लो ॥ एक देव तव करण परित्ता । तिण अव-
 शर तिहां आवै रे लो ॥ अ ॥ १३ ॥ अरणक आवक बैठो
 तिणमें । देव कहै समजायो रे लो ॥ सह मनुष्य सहित ये ज-
 हाज डबोऊं । मान हमारी बायो रे लो ॥ अ ॥ १४ ॥ ज्यो तूं
 मुख सु धर्म छोड्यो कहै । तो सह जीव वच जायो रे लो ॥
 इम सांभल अरणक दृढ मन करि । धर्म ध्यान चित ध्यायो

रेलो ॥ अ ॥ १४ ॥ डिगायो डिगया नहि आवक । करुणा
 मोह न ल्यायो रे लो ॥ उपशर्ग दूर कियो तब निरजर । सु-
 रेन्द्र तास सरायो रे लो ॥ अ ॥ १६ ॥ प्रिय रूप करि कर
 जोड़ी सुर । बोच्यो इह विधि बायो रे लो ॥ प्रिय धर्मो दृढ़
 धर्मो तूं सांचो । ए सप्तम अंग रै मांयो रे लो ॥ अ ॥ १७ ॥
 श्रीजिन मुख सुं सूत्रे आख्यो । स्नेह राग दुख दायो रे लो ॥
 कर्म बीज राग द्वेष बेहूँ तज । ज्यो शिव सुखनीं च्हायो रे लो ॥
 ॥ अ ॥ १८ ॥ जे संसारिक जीवांनीं करुणां । करै उपकार
 स्नेह ल्पायो रे लो ॥ ते उपकार संसार तगुं छै । जिन धर्म
 नहि तिख मांयो रे लो ॥ अ ॥ १९ ॥ जीव जीव ते दया म
 जाणों । मरै ते हिंसा नाहों रे लो ॥ मारण वालो हिंसक
 पापी । नहीं मरै त दया सुख दायो रे लो ॥ अ ॥ २० ॥ येह
 संसार समुद्र पकी तिर । बंछ तू तिरणों परायो रे लो ॥ गु-
 लाब कहै धन्य ते नर जाणों । जे रागरु द्वेष खपायो रे लो ॥
 ॥ अ ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

ताप कैसें गजको फंद छुडायो ॥ तथा ॥ भावत मेरी
 गलियन में गिरधारी ॥ इस चाल में ॥

करो तुम दया धर्म सुख कारी । यातैं जलदी होय नि-
 स्तारी ॥ करो ॥ ए आंकटी ॥ पृथिवी अप्य तेऊ वायु बन-
 स्पति । जस जीव अधिक अपारी ॥ येह पटकाय हणों मत
 कोई । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ सर्व प्राण
 भूत जीव सत्व प्रति । नहि इणवा सुविचारी ॥ दंड करि ता-

ठवा नहिं लाँनै । ते न अल्फावेयव्वा कहारी ॥ करो ॥ २ ॥
 न परि घनव्वा चाकर तणी पँरै । किणही कार्य मझारी ॥
 न परितापवा पीडा देईनै । बलि किलामना न करणी लाँरी
 ॥ क ॥ ३ ॥ उपद्रव न देस्यो किणही जीवने । इम भाष्यो
 जगवारी ॥ तीन कासनां जिननीं ये बाँगी । द्वितीय सुयगडाङ्ग
 जहारी ॥ करो ॥ ४ ॥ इमहिंज प्रथम अङ्गमँ भारुयो । जोवां
 नयनं उघारी । जीव हिन्मा कियां पाप घणेरौ मत हग्यो एम
 विचारी ॥ करो ॥ ५ ॥ गौतम पृथ्वी पंचम अङ्ग । पृथिवी
 हात मझारी ॥ लेतां वेदन कितनीं होवै । जिन कहै दृष्टान्त
 उदारी ॥ करो ॥ ६ ॥ एक पुर्व कोई जन्म नूं आंधो । पग-
 हीण खीण काया सारी ॥ जन्म नूं बहरो जन्म नूं गुंगो ।
 तनु में रोग अपारी ॥ करो ॥ ७ ॥ तरुण पुरुष तसु खडग
 भालै करि । छेदै भेदै क्रोध धारी ॥ वेदना हाँवै अंध पुर्व नै ।
 छेयां भेयां तिणवारी ॥ करो ॥ ८ ॥ तिणथी अधिक कष्ट
 पृथिवी नै । लेतां हात मझारी ॥ इम यावर पांचूं प्रति वेदन
 आगम में अधिकारी ॥ करो ॥ ९ ॥ निगोद जमीकंद वन-
 स्पति का । सुनेये हिव विस्तारी ॥ अग्र सूई पै आवै तिणमें ।
 श्रेण असंख्य कहारी ॥ करो ॥ १० ॥ इक इक श्रेण में प्र-
 तर असंख्या । प्रतर येक मझारी ॥ गं ला असंख्य हैं इक इक
 गोलै । शरीर असंख्या गहारी ॥ करो ॥ ११ ॥ इक इक श-
 रीरें जीव अनन्ता । कहतां न आवै पारी ॥ इम जाणीं हिन्सा
 नहिं करिये । जिन धर्म मर्म विचारी ॥ करो ॥ १२ ॥ धुर
 आश्रव धुर पापनुं स्थानक । दुर्गति दुःख दातारी ॥ आरंभ
 छाँडि दया दिल धारिण । जिम पापों भव पारी ॥ करो ॥ १३ ॥
 हिन्सा कियां में धर्म न किमपि । आगम माँह सुनारी ॥ एके-

न्द्री गार भेलेन्द्री पोरुया । धर्म पुन्य नाहिं भेनारी ॥ करो ॥
 ॥ १४ ॥ देणल पढिमां करै करावै । पृथिवी काय विहारी ॥
 कछां भहेत भयौधतूं कारण । धुर भडै जगतारी ॥ करो ॥ १५ ॥
 जीव हथियां भैं दोष ज हंनै । हथियां न दोष उचारी ॥ ए
 आर्घ्य सनार्घ्य ना बचन कछा जिन । आचारंग संभारी ॥
 ॥ करो ॥ १६ ॥ इष जाखीं परम धर्म ए करिये । अहिंसा
 सुख काही ॥ गुलाबचंद कहै धन्य शुद्ध साधू । चरण कमल
 बलिहारी ॥ करो ॥ १७ ॥

॥ कलश ॥

सुद्धकार श्रावक धर्म करिये, व्रत द्वादश रूपही । संसार
 पारावार तरिये, कछां श्रीजिन भूपही ॥ अविरत सेयां अने
 सेवायां, अनुमोद्या हवै पापही । गुलाब कहै इम शुद्ध अद्धी,
 करो श्रीजिन ज्ञापही ॥ १ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥



* श्रीः *

शुद्धाशुद्धपत्रम् ।

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१.	१२	लिखाना	लिखलाना
२	१५	साधूकै	साधूके
३	१०	शागर में	सागर में
४	११	चातुर्माग	चतुर्माग
४	१२	सरल	सरल
६	४	तरह	तरह
७	१	वोह	वह
७	३	काम में	कामोंमें
३	१	सकत	सकने
१०	४	पंचेन्द्रि को	पंचेन्द्री को
१०	१६	सरधो	श्रद्धा
१०	१७	सब दरशी	सर्व दरशी
१२	१२	दृढव्यारे	दृढव्यारे
१२	२०	ज्यां	जहां
१३	१	वर्मतां	वर्पनां

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१३	५	स्वारथ	स्वार्थ
१३	७	लाभ	लोभ
१३	८	लगार	लिंगार
१३	६	रहा	रहो
१३	११	भापेरे	भाषिरे
१४	३	द्रोपद	द्रुपद
१४	६	दानूँही	दोनूँही
१४	११	सीमां विवादः	सीमां विवादः
१५	१	स्वयं वरा मण्डप	स्वयं वर मण्डप
"	६	दशा	दशा
१७	२	निरपत्ती	निष्पत्ती
"	७	विनास	विनाश
१६	४	न	ने
२०	२	वृक्ष्य	वृक्ष्य
२३	६	मानस	मांस
"	१५	सिधिलाचारी	शिथिलाचारी
२४	१३	सर्वज्ञय	सर्वज्ञ
२६	७	धर्मानुरागीयों	धर्मानुरागीयों
२६	८	निरपत्ती	निष्पत्ती

पाने	लाइन	मशुद्ध	शुद्ध
२७	१	यान	यानें
२७	४	उनका	उनको
२७	४	सखवत	सखवत
२७	५	करक	करके
२७	१०	सरघ	मर्घ
२७	१०	महापित	मरूपित
२७	१०	धरमही	धर्मही
२८	८	हाके	होके
२८	१०	घेडे हैं	थोडे हैं
२८	११	तदश्च दल	सदस्य दल
३०	६	चक्रवर्त्त	चक्रवर्ती
३०	११	अमौल्य	अमूल्य
३२	८	भेष	भेष
३५	१७	वेपधारी	भेषधारी
३७	२३	इहाया	इहाया
३८	८	गुण शिल	गुण शील
३८	१६	होना	हांना
४०	५	नारीया	नारियां
४०	६	झौदद	झौर

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
४०	११	देवताओं ने	देवताओं ने
४०	१२	स्त्री	स्त्री
४०	२०	हीनाचारीयो	हीनाचार्यों
४१	२४	प्ररूपन	प्ररूपना
४२	१३	श्री	श्री
४२	२०	रोचते	सोचते
४४	१५	थडा	घोडा
४४	२१	एसा	ऐसा
"	२२	पापना	पोपना
"	२४	करक	करके
४५	३	कीया	किया
४५	७	द्रमान्ति	दृष्टान्ति
४६	१	चलावीयो	चलावियो
"	२	भावियो	भावियो
४६	६	दरखत	दरखत
"	२१	हो	है
४७	५	मूर्प	मूर्ख
"	६	निर्बुद्धियों	निर्बुद्धियों
४६	१६	मारग	मार्ग

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
४६	२०	दस	दश
५०	८	मिथुन	मैथुन
५०	१२	निरलोभी	निर्लोभी
५१	२	संपत्तीयों	संयत्तियों
५१	१२	सर्वग्य	सर्वज्ञ
५१	१४	साधूवों	साधुओं
५२	१	यथासक्ति	यथाशक्ति
५५	१८	ज्ञानि	ज्ञानी
५८	११	कादाचि	कदाचिद्
५८	२०	साहत	सहित
"	"	हात है	होते हैं
"	"	भागमें	भागमें
"	"	जावज्जाव	जावज्जीव
"	२०	जाग सें	जोगों सें
"	२२	किया	कीया
५६	१७	कुशाग्रमात्र	कुशाग्रमात्र
६०	१२	जिसहि	जिस ही
६१	४	माटो	मांटे
"	५	परितीत	परतीत

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
६३	६	काहियो	कहणी
"	१४	बोलां	बेलां
६८	८	उमदेसे	उमेद सें
६६	११	कुछभी	कुँछभी
६६	१६	महापीढ	महापीडा
७०	७	महारो	म्हारो
"	१४	गृहस्थ	गृहस्थ
७१	१४	जीऊं	जीवूं
७२	१	मोह	मोह
"	१६	वीपरीत	विपरीत
७३	१७	दुर्दसा	दुर्दशा
७३	१८	ऐसी	ऐसी
७५	१७	भवम्न	भवम्भ
७६	७	खिरू	खीका
७७	१३	पासौ	पोसै
"	१४	मोष	मोख
७८	२३	नाहि	नही
७६	५	जमवार	जमवार
"	१२	मोटो	मोटी

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
८०	३	विकारसधी	विकारसेवी
८०	१९	पावत्	यावत्
८०	२०	ममान	समान
८१	१५	मनुष्यव्यवहार	मनुष्यजन्महार
८२	२२	लील	लीला
८३	४	सुरवीर	शूरवीर
८३	५	खिको	स्त्रीको
८४	१४	जाते हैं	जाता हैं
८४	१६	वाला	वाले
८४	१८	ज्ञानीयों ने	ज्ञानियों ने
८५	३	अभिन्तर	अभ्यन्तर
८५	१२	प्रण्णा	तृष्णा
८६	२०	करन	नरक
८७	८	एह	यह
८८	१६	मुन्छा	मूर्च्छा
८९	३	बोहतसी	बहोतसी
९२	५	आण	आणि
"	१४	कैर	करै
९२	४	उपरंत	उपरान्त

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
६४	२	चाहए	चाहिए
"	७	सुखा	सुखी
"	९०	ओपमां	ओपमां
६६	२१	देसतः	देशतः
१००	१	कर्मोरपार्जन	कर्मोपार्जन
१००	१८	जिससें करण पाप	जिससेतृतीयकरणपाप
१०२	११	खारै	खारै
"	१५	चक्रिवर्त्त	चक्रवर्त्तो
"	१६	श्वमेव	स्वयमेव
१०३	७	जिब्भारो	जिब्भारो
"	१६	रत्तन	रत्न
१०४	११	गुणोत्पन्न	गुणोत्पन्न
"	१३	त्रपादि	तृपादि
"	१४	पूरण	पूर्ण
"	२२	तात्पर	तात्पर्य
१०४	१८	पारण	पारणा
१०८	१३	अथाव	अर्थाव
"	२०	केवडा	कवडा
१०६	१८	एह	यह

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१११	६	इहां	यहां
११	११	अल्पमा	अल्पसा
११३	२०	दूमरका	दूमरेको
११४	८	दण्ड है	दण्ड है
११६	१६	एहलोक	यहलोक
११	११	जिवितव्य	जीवितव्य
११७	६	तात्पर	तात्पर्य
११८	१	विविध	विवध
११	१५	रात्रि	रात्री
११६	१६	आभरणरा	आभरणरा
१२२	१२	तात्पर	तात्पर्य
१२५	८	सर्पादिक	सर्पादिक
१२६	२	लाक	लाके
१३२	१	द्वितीया	द्वितीया
१३६	६	सुवर्ण	सुवर्ण
१३	११	"	"
१३६	१४	जाग	जोग
१३	१७	जागों से	जोगों से
१३७	१	रात्रि	रात्री
१३	२	सुवर्ण	सुवर्ण

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१७३	६	सुत्रण	सुत्रण
"	१५	"	"
"	२०	"	"
१३८	८	मजूरीया	मजूरिया
"	"	कर्म	कर्म
१३६	८	विधि	विधि
१४०	२२	आत्म	आत्म
१४२	६	हाना	होना
"	१२	निरदोष	निर्दोष
"	१६	इसलीये	इसलिये
१४५	२३	स्वतहः	स्वतः
१४६	२	मिलन	मिलने
१४८	२२	बी	भी
१४६	६	पुर्षो	पुरुषो
"	१०	निरदोष	निर्दोष
"	२४	एवसा	एकसा
"	२२	हाताहै	होताहै
१५०	१	करिक	करिके
"	६	निरन्तर	निरन्तर

पाने	लाइन	अधुद्ध	शुद्ध
१.५०	६	तात्पर	तात्पर्य
"	१६	याग	योग
१.५२	२	अनुमादने	अनुमोदने
"	११	ग्रहस्तो	ग्रहस्थो
"	१२	ग्रहस्त	ग्रहस्थ
१.५७	१६	स्वामी	खाली
१.५६	६	निरबुद्धि	निर्बुद्धि
१.६५	६	न्यातीला	न्यातीला
१.७८	१८	अनरघनुं	अनर्थनुं
१.८०	१५	द्वितीय	द्वितीय
१.८१	२५	ध्वान	ध्यान
१.८२	१२	पटरश	पटरस
१.८४	६	चापद	चौपद
१.८५	१६	उपसर्ग	उपसर्ग
१.८६	२२	जगवलभ	जगवल्लभ
१.८६	८	क्रियावन्त	क्रियावन्त
"	१३	प्रमेष्टी	परमेष्टी
१.९०	१३	हान्ति	हांसी
"	"	कोतुहल	कौतुहल

पाने	लाइन	अयुद्ध	युद्ध
१६२	८	कांतुहल	कांतुहल
१६३	९२	दुमरो	दुमरो
१६८	१०	ताजै	ताजै
२०५	५	कुडी	कूडी
२०७	१८	पटवाल	पटवाल
२१०	"	क्षेत्र	क्षेत्र
११	४	प्राक्रम	पराक्रम
११	१६	गई	राई
११	१८	महो	सहो
११	२५	सिघ	शीघ्र
२१४	४	हवली	हवली
११	७	धयवरे	धयवरे
११	१६	ढल	ढाल
२१६	३	शर्प	सर्प
२१६	२३	विविध	विविध
११	२५	द्वितीय	द्वितीय
२१७	१	तृतीय	तृतीय
११	७	गणीस्वर	गणीश्वर
११	"	पातिक	पातक

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२१६	१२	खासै	खोसै
२२०	११	स्तनम	स्तवनम
२२०	१६	तेसुं	तसुं
२२२	१	जपा	जपो
२२३	१६	मुनिधरे	मुनिवरुहे
२२४	२	निमल	निरमल
२२५	१७	लोकीके	लोकीक
२२५	१	पामाय	पोमाय
२२६	६	उत्राध्ययन	उत्तराध्ययन
२२६	२५	दृढ़	दृढ
२२७	२	लयाया	लयायो
२२७	११	उपशर्ग	उपसर्ग
२२७	७	च्छाया	च्छायो
२२८	१२	त दया	ते दया
२२८	६	जोवा	जोवो
२२८	१६	गला	गोलः

